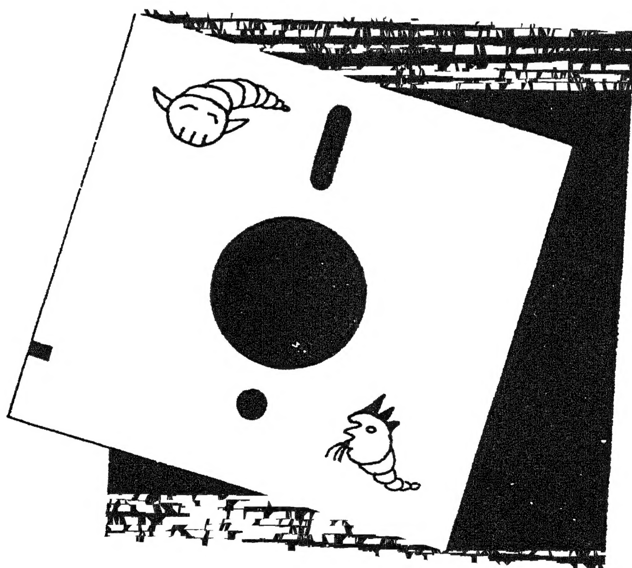
डा मेघनाद साहा पुरस्कार से सम्मानित
(विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार)

कम्प्यूटर वाइरस

सुरक्षा एवं निवारण

धुरेन्द्र कुमार
एव
रजवन्त सिंह



केवल एक ही सक्रमित फ्लोपी डिस्क कम्प्यूटर नेटवर्क से जुडे हजारों कम्प्यूटरों को अपग बना सकती है । सावधानी का यह सदेश सदैव याद रखें ।

पर्यावरण और वन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत

प्रवासी जीव-जंतु

प्रवासी जीव-जंतु

श्यामसुन्दर शर्मा
डॉ अशोक कुमार मल्होत्रा



साहित्य सहकार
दिल्ली-110032

ISBN 81-7149-026-3

सस्करण 2003

मूल्य 150 रुपये

प्रकाशक

साहित्य सहकार

29/62-बी, गली न 11, विश्वास नगर,

दिल्ली-110032

फोन 2205703

मुद्रक

द्रक प्रतिभा प्रिंटस द्वारा आर के ऑफसेट, रोहताश नगर, दिल्ली-32

PRAVASI JEEV-JANTU (Migrated Animals)

by Shyam Sunder Sharma & Dr Ashok Kumar Malhotra

Price Rs 150 00

क्रम

1 प्रवास-यात्रा क्यों

पृथ्वी पर असख्य किस्म के जीव-जन्तु रहते हैं। इनमे से कुछ सरल पदार्थों से स्वय अपना भोजन बना लेने की क्षमता रखते हैं। इन्हे पेड-पौधे कहा जाता है। अन्य ऐसा नही कर पाते। वे अपने भोजन के लिए, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से पेड-पौधो पर निर्भर रहते हैं। वे जन्तु कहलाते हैं। जन्तुओ मे एक ऐसा गुण होता है जो पेड-पौधो मे नही होता। पेड-पौधे अपना स्थान परिवर्तन स्वय नही कर सकते जबकि जन्तु एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं। उन्हे भोजन की तलाश मे अथवा प्रजनन हेतु उपयुक्त स्थान ढूढने के लिए अक्सर ही स्थान-परिवर्तन करते रहना पडता है। कभी-कभी सुरक्षा की दृष्टि से भी इन्हे लम्बी-लम्बी यात्राये करनी पडती हैं। ये यात्राये दैनिक भी होती हैं, मौसम के अनुसार भी की जाती हैं और कभी-कभी जीवन मे केवल एक बार ही की जाती हैं।

सफेद भालू जो उत्तर ध्रुव के चारो ओर चक्कर काट जाता है, आर्कटिक टर्न पक्षी जो आर्कटिक से अटार्कटिक तक की उडान भर जाता है, व्हेल जो सर्दी बिताने के लिए अटार्कटिक महासागर से गर्म सागरो मे आ जाती है, गोल्डन प्लोवर पक्षी जो पूरे प्रशात महासागर का चक्कर लगा जाता है, उसी प्रेरणावश यात्रा करता है जिसके वशीभूत होकर मेढक कुछ सौ मीटर की यात्रा करते हैं, गिलहरी एक वृक्ष से दूसरे पर जाती है और मक्खी एक खरगोश से दूसरे खरगोश पर।

ऐसी यात्राये आमतौर से प्रवास-यात्रा होती है। पर जन्तुओ की हर यात्रा प्रवास-यात्रा नही होती। अगर एक चूजा बार-बार सडक पार करता है या लेमिग किसी दिन अचानक सागर की ओर चल पडता है अथवा टिड्डी दल किसी क्षेत्र की ओर उड जाता है, तो वह यात्रा जरूर है पर प्रवास यात्रा नही। प्रवास-यात्रा या प्रवसन (माइग्रेशन) "ऐसी यात्रा है जिसमे जीव लौटकर उसी स्थान या क्षेत्र

आती हैं।

कुछ लोगो को यह भ्रम हो सकता है कि जीव-जन्तु केवल सर्दी मे ही यात्रा करते है। वास्तव मे ऊपर बताये गये कारण उत्पन्न हो जाने पर वे गर्मी और बरसात मे भी प्रवास-यात्रा पर निकल पडते हैं। हमारे देश के ही कुछ पक्षी प्रजनन के लिए उत्तर प्रदेश के कुछ भागो से दिल्ली के चिडियाघर मे चले आते हैं। यहा ये अडे देते हैं। जब बच्चे बडे हो जाते हैं तब उन्हे लेकर वापिस चले जाते है। सहारा रेगिस्तान के कुछ पक्षी गर्मी के मौसम मे उत्तर के कम गर्म स्थानो पर चले जाते है।

भटकना नहीं — सुनिश्चित यात्रा

जैसा कि आप पढ चुके हैं प्रवास-यात्रा बिना किसी उद्देश्य के भटकना नही है वरन् आतरिक प्रेरणा से की गई सुनिश्चित यात्रा है। इसी-



कौन जीव कि ... करता है

लिए प्रवास यात्रा के दौरान ... क बाधाओ के बावजूद भी अपने गतव्य स्थान की ओर ... थल मार्ग से यात्रा करने वाले जीवो को अपनी प्रवास-य ... क बाधाओ का सामना

मे आ जाता है जिससे उसने यात्रा आरम्भ की थी। वह किसी उद्देश्य से की गई यात्रा है—निरुद्देश्य भटकना मात्र नही है।"

जीव-जन्तु प्रवास-यात्रा करते ही क्यो हैं? इसके बहुत-से कारण हैं पर मुख्य दो हैं। पहला, उस स्थान का, जहाँ वे रहते हैं, मौसम इतना खराब हो जाना कि जीवो के लिए जीवित रहना ही मुश्किल हो जाये और, दूसरा, भोजन की बहुत अधिक कमी हो जाना। इस बात को कुछ विस्तार से समझाना जरूर होगा। मान लीजिये एक लोमडी वर्ष मे 2000 वोल खाती है। पर वह उस क्षेत्र मे साल-भर नही रह सकती जहा वोलो की कुल आबादी ही 2000 हो, क्योकि उस इलाके मे लोमडी को जीवित रहने के लिए प्रत्येक वाल को पकडना जरूरी होगा। पर ऐसा करना उसके लिए हमेशा सम्भव नही हो सकता। इसके लिए उसे दिन मे चौबीसो घटे शिकार की तलाश मे ही घूमना पडेगा। साथ ही वर्ष भर मे स्वय लोमडी की भी वश वृद्धि हो जायेगी। बच्चो को जहा एक ओर उसे समय देना पडेगा, वहा उनके लिए भोजन भी जुटाना पडेगा। इसलिए उसे भोजन की तलाश मे प्रवास यात्रा करनी पडेगी।

यहा यह कहना भी युक्तिसगत होगा कि एक स्थान विशेष की जलवायु एक जाति विशेष के गिद्ध के लिए बहुत उपयुक्त है। वह वहा की सर्दी, गर्मी, बरसात सह सकता है। पर उसके नवजात शिशु ऐसा नही कर पाते। इसलिए उस गिद्ध को, अपने नवजात शिशुओ की रक्षा हेतु प्रवास-यात्रा करनी पडती है।

प्रवास-यात्रा पर निकलने वाले जीव-जन्तु उस समय तक चलते (या तैरते अथवा उडते) रहते हैं जब तक उन्हे सही मौसम नही मिल जाता। मौसम के खराब हो जाने, खासतौर से बर्फ वगैरह के गिरने से भोजन की कमी हो जाती है। इसलिए जीव-जन्तु यात्रा समाप्त करते समय यह भी देखते हैं कि वहा भोजन काफी मात्रा मे मिल सकता है या नही। अगर किसी जगह मौसम अच्छा हो पर भोजन की कमी हो, तो उस जगह वे नही रुकते वरन् आगे बढते जाते हैं।

प्रवास-यात्रा का एक और बडा कारण है ऐसी जगह की तलाश जहा बिना किसी खतरे के जीव-जन्तु अडे या बच्चे दे सके। साप, मेढक, अनेक किस्मो के पक्षी तथा सालमन और ईल जैसी मछलिया इसीलिए प्रवास-यात्रा करती हैं। वे अडे देने के बाद अपने स्थान को लौट

आती हैं।

कुछ लोगो को यह भ्रम हो सकता है कि जीव-जन्तु केवल सर्दी मे ही यात्रा करते है। वास्तव मे ऊपर बताये गये कारण उत्पन्न हो जाने पर वे गर्मी और बरसात मे भी प्रवास-यात्रा पर निकल पडते हैं। हमारे देश के ही कुछ पक्षी प्रजनन के लिए उत्तर प्रदेश के कुछ भागो से दिल्ली के चिडियाघर मे चले आते हैं। यहा ये अडे देते है। जब बच्चे बडे हो जाते है तब उन्हे लेकर वापिस चले जाते है। सहारा रेगिम्तान के कुछ पक्षी गर्मी के मौसम मे उत्तर के कम गर्म स्थानो पर चले जाते है।

भटकना नहीं — सुनिश्चित यात्रा

जैसा कि आप पढ चुके हैं प्रवाम-यात्रा बिना किसी उद्देश्य के भटकना नही हे वरन् आतरिक प्रेरणा से की गई सुनिश्चित यात्रा है। इसी-



कौन जीव कितनी लम्बी प्रवास यात्रा करता है

लिए प्रवास यात्रा के दौरान जीव-जन्तु अनेक बाधाओ के बावजूद भी अपने गतव्य स्थान की ओर बढते जाते हैं। थल मार्ग से यात्रा करने वाले जीवो को अपनी प्रवास-यात्राओ मे अधिक बाधाओ का सामना

मे आ जाता है जिससे उसने यात्रा आरम्भ की थी। वह किसी उद्देश्य से की गई यात्रा है—निरुद्देश्य भटकना मात्र नही है।"

आखिर जीव-जन्तु प्रवास-यात्रा करते ही क्यो हैं ? इसके बहुत-से कारण हैं पर मुख्य दो हैं। पहला, उस स्थान का, जहा वे रहते हैं, मौसम इतना खराब हो जाना कि जीवो के लिए जीवित रहना ही मुश्किल हो जाये और, दूसरा, भोजन की बहुत अधिक कमी हो जाना। इस बात को कुछ विस्तार से समझाना जरूर होगा। मान लीजिये एक लोमडी वर्ष मे 2000 वोल खाती है। पर वह उस क्षेत्र मे साल-भर नही रह सकती जहा वोलो की कुल आबादी ही 2000 हो, क्योकि उस इलाके मे लोमडी को जीवित रहने के लिए प्रत्येक वोल को पकडना जरूरी होगा। पर ऐसा करना उसके लिए हमेशा सम्भव नही हो सकता। इसके लिए उसे दिन मे चौबीसो घटे शिकार की तलाश मे ही घूमना पडेगा। साथ ही वर्ष भर मे स्वय लोमडी की भी वश वृद्धि हो जायेगी। अपने बच्चो को जहा एक ओर उसे समय देना पडेगा, वहा उनके लिए भोजन भी जुटाना पडेगा। इसलिए उसे भोजन की तलाश मे प्रवास यात्रा करनी पडेगी।

यहा यह बताना भी युक्तिसगत होगा कि एक स्थान विशेष की जलवायु एक जाति विशेष के गिद्ध के लिए बहुत उपयुक्त है। वह वहा की सर्दी, गर्मी, बरसात सह सकता है। पर उसके नवजात शिशु ऐसा नही कर पाते। इसलिए उस गिद्ध को, अपने नवजात शिशुओ की रक्षा हेतु प्रवास-यात्रा करनी पडती है।

प्रवास-यात्रा पर निकलने वाले जीव-जन्तु उस समय तक चलते (या तैरते अथवा उडते) रहते हैं जब तक उन्हे सही मौसम नही मिल जाता। मौसम के खराब हो जाने, खासतौर से बर्फ वगैरह के गिरने से भोजन की कमी हो जाती है। इसलिए जीव-जन्तु यात्रा समाप्त करते समय यह भी देखते हैं कि वहा भोजन काफी मात्रा मे मिल सकता है या नही। अगर किसी जगह मौसम अच्छा हो पर भोजन की कमी हो, तो उस जगह वे नही रुकते वरन् आगे बढते जाते हैं।

प्रवास-यात्रा का एक और बडा कारण है ऐसी जगह की तलाश जहा बिना किसी खतरे के जीव-जन्तु अडे या बच्चे दे सके। साप, मेढक, अनेक किस्मो के पक्षी तथा सालमन और ईल जैसी मछलिया इसीलिए प्रवास-यात्रा करती हैं। वे अडे देने के बाद अपने स्थान को लौट

आती हैं।

कुछ लोगो को यह भ्रम हो सकता है कि जीव-जन्तु केवल सर्दी मे ही यात्रा करते है। वास्तव मे ऊपर बताये गये कारण उत्पन्न हो जाने पर वे गर्मी और बरसात मे भी प्रवास-यात्रा पर निकल पडते हैं। हमारे देश के ही कुछ पक्षी प्रजनन के लिए उत्तर प्रदेश के कुछ भागो से दिल्ली के चिडियाघर मे चले आते हैं। यहा ये अडे देते है। जब बच्चे बडे हो जाते है तब उन्हे लेकर वापिस चले जाते है। सहारा रेगिम्तान के कुछ पक्षी गर्मी के मौसम मे उत्तर के कम गर्म स्थानो पर चले जाते है।

भटकना नही — सुनिश्चित यात्रा

जैसा कि आप पढ चुके हैं प्रवाम-यात्रा बिना किसी उद्देश्य के भटकना नही है वरन् आतरिक प्रेरणा से की गई सुनिश्चित यात्रा है। इसी-



कौन जीव कितनी लम्बी प्रवास यात्रा करता है

लिए प्रवास यात्रा के दौरान जीव-जन्तु अनेक बाधाओ के बावजूद भी अपने गतव्य स्थान की ओर बढते जाते है। थल मार्ग से यात्रा करने वाले जीवो को अपनी प्रवास-यात्राओ मे अधिक बाधाओ का सामना

करना पडता है। उन्हे गहरी नदिया पार करनी होती है, ऊचे पर्वत लाघने होते है और गर्म मरुस्थलो को पार करना होता है। जलचरो को यह नही करना पडता। पर अनेक बार उन्हे तेज जलधाराओ के बहाव के विपरीत तैरना होता है। सालमन जैसी मछलियो को, जो नदियो मे बहाव के विपरीत यात्रा करती है, ऊची-ऊची छलागे लगाकर जलप्रपातो और बाधो को पार करना होता है। साथ ही मछुओ के जालो और शिकारी जीवो से भी बचना होता है। नभचरो को अपेक्षाकृत सबसे कम कठिनाइयो का सामना करना पडता है यद्यपि तूफान, वर्षा तथा ऊची इमारते, टेलीविजन टावर आदि उनकी यात्रा मे बाधा पहुचाते है। इसीलिये थल पर रहने वाले जीव-जन्तुओ की प्रवास-यात्राये सबसे छोटी और पक्षियो की सबसे लम्बी होती है। पक्षी सागर पर भी लम्बी-लम्बी, कई हजार किलोमीटर लम्बी, यात्रा कर लेते है।

कुछ वैज्ञानिको का मत है कि पक्षियो और स्तनधारी प्राणियो मे यह गुण उस समय विकसित हुआ था जब पृथ्वी पर अतिम हिमयुग आया था। जब से पृथ्वी बनी, उसकी जलवायु कई बार ठडी हुई और कई बार फिर गर्म हो गई। जब वह ठडी हो जाती थी, उसके अधिकतर भाग बर्फ से ढक जाते थे। आज से लगभग 30 हजार वर्ष पहले भी ध्रुवो, खासतौर से उत्तर ध्रुव की हिमनदिया (ग्लेशियर) काफी नीचे आ गई थी। उस समय आज के यूरोप और उत्तर अमेरिका का अधिकतर भाग बर्फ से ढक गया था। उस समय ठड की ऋतु मे भयकर ठड हो जाती थी। साथ ही भोजन भी कम हो जाता था। इसलिए विभिन्न किस्मो के जीव-जन्तु ठड और भूख से बचने के लिए दक्षिण की ओर आ जाते थे। गर्मी की ऋतु आने पर मौसम कुछ सुखद हो जाता था तो वे फिर उत्तर की ओर लौट जाते थे। ऐसा हर सर्दी और गर्मी मे, हजारो साल तक, होता रहा। इतने समय मे जीव-जन्तुओ की कई पीढिया बीत गई। इसलिए जीव-जन्तुओ को सर्दी मे गर्म प्रदेशो मे आने की तथा गर्मी के दिनो मे लौट जाने की आदत हो गई। यह आदत पीढी-दर-पीढी चलती रही और आज भी चल रही है।

पर ज्यादातर वैज्ञानिक यह मानते है कि प्रवास-यात्रा की आदत आखिरी हिमयुग से कही पुरानी है। जीव-जन्तु आखिरी हिमयुग से पहले भी प्रवास यात्रा करते थे। साथ ही ऐसे जीव जन्तु भी प्रवास-

यात्रा करते हैं जो हिमयुग के समय भी गर्म प्रदेशो मे रहते थे। वैसे अलग-अलग किस्मो के जीव-जन्तुओ मे यह गुण अलग-अलग तरीको से, भिन्न-भिन्न समय, विकसित हुआ होगा। कुछ लोगो का यह भी मत है कि प्रवास-यात्रा करने का गुण जीव-जन्तुओ को उनके विकास-क्रम मे ही प्राप्त हो गया था। यह गुण उनके 'जीनो' मे ही अकित हो गया है। यह गुण उन्हे कैसे भी प्राप्त हुआ हो पर इतना जरूर है कि इस गुण के फलस्वरूप जीव-जन्तु बेहतर तरीके से अपनी रक्षा कर लेते है और विषम परिस्थितियो मे भी जीवित रहे आते है। इस बारे मे ब्रिटेन मे रहने वाले एक पक्षी का उदाहरण अक्सर दिया जाता है। इसका नाम है साग थ्रश। इस जाति के कुछ पक्षी सर्दी के दिनो मे गम देशो को चले जाते है। पर कुछ ब्रिटेन मे ही रहे आते है। जिस साल तेज सर्दी पडती है गर्म देशो को चले जाने वाले पक्षी कम मरते हैं पर ब्रिटेन मे रह जाने वाले पक्षी अधिक तादाद मे मरते है।

प्रवासी जीव-जन्तुओ मे सबसे ज्यादा अध्ययन पक्षियो का किया गया है। इसलिए पहले उन्ही की प्रवास-यात्राओ की चर्चा कर ली जाये।

2 पक्षियो की प्रवास-उडाने

पक्षी वैज्ञानिको के लिए 21 मई, 1822 एक अविस्मरणीय दिवस है। उस दिन पहली बार यह प्रामाणिक रूप से सिद्ध हुआ था कि पक्षी लम्बी-लम्बी प्रवास-यात्राये करते है। उस दिन मैकलेनबर्ग, जर्मनी, मे एक ऐसा लगलग (स्टार्क) पकडा गया था जिसकी गर्दन मे बाण घुसा हुआ था। उस बाण पर जो सकेत अकित थे वे अफ्रीका के किसी देश के थे। इससे यह आभास हुआ कि यह लगलग अफ्रीका से आया था।

पक्षी की प्रवास-यात्राओ के बारे मे प्राचीन सस्कृत और यूनानी साहित्यो म उल्लेख मिलते हैं। ऐसे ही उल्लेख "ओल्ड टेस्टामेट" तथा अन्य प्राचीन साहित्य मे भी मिले हैं। आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अरस्तू ने यह सुझाया था कि पक्षी सर्दियो मे शीतनिद्रा लेते है। तेरहवी शताब्दी के आरम्भिक चरण मे जर्मनी के सम्राट फ्रेडरिख द्वितीय ने पक्षियो को भूमध्यसागर पर से दक्षिण की ओर उडान भरते देखा था। उन्होने यह भी सुझाया था कि सर्दियो मे यूरोपीय पक्षी दक्षिण की ओर चले जाते है।

अमेरिका के मूल निवासी रैड इडियन इन पक्षियो को बहुत पसद करते थे। उन्होने अपने महीनो के नाम भी इन पक्षियो के नामो पर रख लिये थे। मजेदार बात यह है कि लोग इन्हे देखते, मौका मिलने पर इनका शिकार कर लेते, पर वे यह नही जानते थे कि पक्षी दरअसल कहा से आते थे, क्यो आते थे, और वे वापिस क्यो चले जाते थे।

जैसा कि आपको ज्ञात है कि केवल पक्षी ही प्रवास-यात्रा करने वाले जीव नही है, थलचर, स्तनधारी, जलचर, मछलिया और उभयचर भी प्रवास-यात्राये करते है। परन्तु पक्षियो की प्रवास-यात्राये ही सबसे बडी, सबसे रोचक और कदाचित सबसे विलक्षण होती है।

प्रवासी पक्षी हजारो किलोमीटर की उडान भरकर हर वर्ष अपने गतव्य स्थान पर पहुचते हैं। जब तक वहा मौसम-परिस्थितिया अनुकूल होती हैं वे रहते है। फिर, मौसम बदलना आरम्भ होते ही, वे एकदम उडान भर कर वापस अपने 'घर' आ जाते हैं—यद्यपि उनके सदर्भ मे 'घर' की परिभाषा हमारी परिभाषा से भिन्न होती है।

हजारो किलोमीटर की प्रवास-यात्रा करने के बाद कुछ जातियो के पक्षी एकदम उसी स्थान और कभी कभी उसी वृक्ष पर ही जाकर रुकते हैं जहा वे पिछले अनेक वर्षो से आते रहे है। जगतप्रसिद्ध पक्षी-वैज्ञानिक डा सलीम अली ने एक ब्लोबन चिडिया (**मोटासिला सिने-रिआ**) को लगातार चार वर्षो तक (1942 से 1946 तक) हर वर्ष उनके बम्बई स्थित घर के बगीचे मे, साइबेरिया से सर्दी बिताने आते देखा था।

दक्षिण अमेरिका क पक्षीवैज्ञानिक, पी शावर्ट्ज़ ने नदर्न वाटर थ्रश (**सीयुरस नावेबोरेंसिस**) के अध्ययनो के दौरान यह पाया कि उस प्रजानि के पक्षी कैराकस (वैनेजुला) के उसी वनस्पति उद्यान मे, उसी स्थान पर, सर्दिया बिताते है जहा उन्ह छल्ले पहनाये गये थे।

पर हर जाति के पक्षी ऐसा नही करते। कुछ जाति के पक्षी काफी बडे क्षेत्र मे फैल जाते हैं।

पक्षी थल पर से ही नही बडी-बडी जल राशियो पर से भी हजारो किलोमीटर की उडाने भरते हैं। वे लगातार कई दिनो तक उडते रहते हैं। आमतौर पर वे 400 मीटर जैसी ऊँचाई पर उडते हैं—विशेष रूप मे उस समय जब वे सागर पर से उडते हैं। पर अनेक पक्षी 8000 मीटर जैसी ऊँचाई पर भी उडान भर लेते है। साइबेरिया से हमारे देश मे आने वाली अनेक जातियो की बतखे, हस, सारस आदि हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियो पर से उडकर हमारे देश मे सर्दी बिताने आती हैं। वे इन चोटियो पर से दिन मे ही नही रात मे भी उडान भरती हैं। कीडे खाने वाले गौरैया जाति के पक्षी रात मे उडाने भरना अधिक पसद करते है। डोमकौवे जैसे पक्षी माऊट एवरेस्ट तक की ऊँचाई पर भी आसानी से उडान भर लेते है।

आज हमे मालूम है कि ससार मे कुल 8580 जातियो के पक्षी पाये जाते हैं। इनमे से लगभग दो तिहाई जातियो के पक्षी नियमित रूप से प्रवास-यात्राये करते है। इनमे छोटे पक्षी भी है और बडे भी। वे पक्षी

भी हैं जो शिकार करते है और वे भी जिनका शिकार किया जाता है। उनमे शाकाहारी भी शामिल हैं और मासाहारी भी। थल पर ही पूरा जीवन बिता देने वाले भी और जल पक्षी भी। यद्यपि शतुर्मुर्ग जैसे उड न सकने वाले पक्षी प्रवास-यात्रा नही करते, परन्तु पेन्गुइन सागर मे तैरकर लम्बी प्रवास-यात्रा करते है। पृथ्वी के हर भाग मे पक्षी प्रवास-यात्रा करते हैं। लगभग हर देश मे भिन्न-भिन्न मौसमो मे अन्य देशो से पक्षी आते रहते है। हमारे देश मे साइबेरिया जैसे ठडे क्षेत्रो से तो पक्षी आते ही हैं, देश के ठडे भागो से भी गर्म भागो मे जाते हैं। साथ ही वे गर्मी और बरसात मे भी प्रवास-यात्रा करते हैं। सहारा रेगिस्तान के उत्तरी भागो मे रहने वाला करसर (**करसोरियस कर-सर**) और रेगिस्तानी लार्क (**एम्मोमेनस सिंकटुरा**) गर्मी से बचने के लिए प्रवास-यात्रा करने वाले पक्षियो के ज्वलत उदाहरण हैं।

आमतौर से पक्षियो का प्रवास-यात्रा चक्र एक वर्ष मे पूरा हो जाता है, पर कुछ पक्षियो के चक्र मे एक वर्ष से अधिक समय लग जाता है। **स्टेरना फुस्काटा** एक ऐसा ही पक्षी है।

कारण

पक्षी-प्रवास का एक मुख्य कारण है भोजन की तलाश। पर यह ही एकमात्र कारण नही है। पक्षी अडे देने से पहले उपयुक्त स्थल तलाश लेते हैं क्योकि जन्म के कुछ दिन बाद तक उनके बच्चे पर्यावरण के प्रति अधिक सवेदनशील होते हैं। पर्यावरण के ताप आदि मे अधिक घट-बढ हो जाने से उन्हे बहुत हानि पहुच सकती है। अनेक पक्षियो, विशेष रूप से कौवा राबिन जैसे शिकारी पक्षियो, के बच्चे जब अडो से निकलते है उस समय वे दृष्टिहीन, बालविहीन और अत्यन्त कम-जोर होते हैं। उन्हे देखभाल की बहुत जरूरत पडती है। ऐसी जरूरत तीन महीने या उससे भी अधिक समय तक बनी रहती है। इस दौरान बच्चो को बहुत अधिक भूख लगती है। आश्चर्यजनक प्रतीत होते हुए भी यह सत्य है कि उन्हे एक दिन मे कई सौ बार भूख लगती है। इस-लिए उन्हे भोजन काफी अधिक मात्रा मे चाहिए। इसीलिए अनेक जातियो के पक्षी प्रजनन से पहले ऐसे स्थानो पर चले जाते है जहा उनके बच्चो को सुरक्षा के साथ-साथ पर्याप्त मात्रा मे भोजन भी मिल सके।

वैसे भी पक्षियो मे उपापचयन की क्रिया अपेक्षाकृत अधिक तीव्र

होती है। इसलिए वयस्क पक्षियो को भी अधिक भोजन चाहिए। जिन पक्षियो को एक ही स्थान पर सुरक्षा और पर्याप्त भोजन मिल जाता है वे आम तौर से प्रवास-यात्रा नही करते। पर कुछ पक्षी ऐसे भी है जिन्हे एक ही स्थान पर वर्ष भर अनुकूल जलवायु, पर्याप्त भोजन आदि मिलता रहता है फिर भी वे नियम से प्रवास-यात्रा करते है।

सब पक्षी समय-समय पर अपने पख गिराते रहते हैं। उस अवस्था मे जब उनके पख नही होते वे उड नही पाते। इसलिए पख गिरने से पहले हस और बतख जसे पक्षी ऐसे स्थानो पर पहुच जाते है जहा वे बिना उडे भी शत्रुओ से अपनी रक्षा कर सके।

पहले अनेक पक्षीवैज्ञानिको का मत था कि पक्षियो की प्रवास-यात्रा पर निकलने की प्रेरणा और उनके आतरिक प्रजनन तत्र की दशा मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। उन्होने इस बारे मे जो प्रयोग किये उनमे पाया कि सागर तट पर रहने वाले कुछ पक्षी तथा गैन्नेट आदि जातियो के वे पक्षी जो यौन रूप से वयस्क नही होते, शीत ऋतु मे भी अपने 'शीत गृह' मे ही रहे आते हैं।

इसी आधार पर एक ही जाति के नर और मादा पक्षियो के प्रवास-यात्रा करने के तरीको के अन्तर को समझाने के प्रयत्न किये गये हैं। आम तौर से नर पक्षी अपनी मादाओ की अपेक्षा अपने प्रजनन क्षेत्र मे जल्दी वापस आ जाते है, क्योकि वृषण 'डिम्बाशय' की अपेक्षा जल्दी विकसित हो जाते है। इसीलिए नर पक्षी मादाओ की तुलना मे कम लम्बी प्रवास-यात्रा करते हैं।

पर प्रयोगो मे वे पक्षी भी प्रवास-यात्रा करते पाये गये है जिनके प्रजनन अग निकाल दिये गये थे। अब पक्षीवैज्ञानिको का मत है कि पक्षियो की यौन परिपक्वता तथा प्रवास-यात्रा के लिए निकलने की प्रेरणा दो स्वतत्र क्रियाये हैं। हो सकता है कि कुछ बाह्य या आतरिक कारक दोनो क्रियाओ को समान रूप से प्रभावित करते हो।

पक्षियो की प्रवास-यात्रा पर निकलने की प्रेरणा को वातावरणीय परिस्थितिया, यथा भोजन की उपलब्धि, ताप-परिवर्तन आदि, एक हद तक प्रभावित करती हैं। पिंजरे मे बन्द पक्षियो पर किये गये प्रयोगो मे पाया गया है कि दिन की लम्बाई मे घट-बढ प्रवास-यात्रा की प्रेरणा का एक मुख्य कारण है। ऐसे पक्षियो को कृत्रिम प्रकाश मे रखने पर समय से पूर्व ही प्रवास-यात्रा पर निकलने के लिए 'बेचन' होते

पाया गया है। इस बारे मे सिलविया जाति के पक्षियो पर प्रयोग किये गये हैं। ये छोटे पक्षी मध्य और उत्तरी यूरोप मे अडे देते हैं और शरद ऋतु मे अफ्रीका के दक्षिणी भाग की ओर चले जाते हैं।

उक्त निष्कर्षों को सिद्ध करने के लिए पक्षीवैज्ञानिको ने कुछ प्रयोग किये। इनके लिए उन्होने घोसलो से वसत ऋतु मे नवजात शिशु पक्षी लिये और उन्हे चार भागो मे बाटा। इनमे से दो भागो को जर्मनी ले जाया गया। वहा एक भाग को स्थिर ताप पर रखा गया जब कि दूसरे को, ऐसे क्षेत्र मे रखा गया, जहा हमेशा, 12 घन्टे तक कृत्रिम प्रकाश और 12 घन्टे तक अधेरा रहता था। बाकी के दो भागो को अफ्रीका मे इन पक्षियो के 'शीत निवास' ले जाया गया। यद्यपि चारो भागो के पक्षियो को अलग-अलग परिस्थितियो मे रखा गया, पर उन सबमे प्रवास-यात्रा के प्रति एक सी ही प्रेरणा उत्पन्न होती पायी गई।

कुछ वैज्ञानिको का मत है प्रवास-यात्रा की प्रेरणा का सम्बन्ध कुछ हारमोनो—गोनेडोट्रापिक हारमोनो—के स्रवण से होता है। ये हारमोन पक्षी के मस्तिष्क के निचले भाग मे स्थित अग्र पियूष (एन्टीरियर पिट्यूरी) ग्रन्थि से स्रवित होते हैं। और ये पक्षियो के अडाशय या वृषण को ही नही वरन् अन्य अगो की क्रियाओ को भी प्रभावित करते है। उदाहरण के लिए ये शरीर मे वसा के निर्माण और भडारन को भी प्रभावित करते हैं।

बाद मे किये गये अध्ययनो मे पाया गया कि प्रकाश की मात्रा और अवधि (दिन की लम्बाई) मे बढोत्तरी होने से पियूष ग्रथि उत्तेजित हो जाती है और वह अधिक मात्रा मे गोनेडोट्रापिक हारमोन स्रवित करने लगती है। वसत के आरम्भ मे प्रवास-यात्रा पर निकलने वाले पक्षी इसके प्रमाण हैं।

हारमोनो की स्रवित होने वाली मात्रा मे वृद्धि हो जाने से पक्षी बेचैन हो जाते हैं। यह बेचैनी उन पक्षियो मे भी देखी जा सकती है जिन्हे शैशव अवस्था मे ही पिंजरो मे बन्द कर दिया गया था और जिन्होने पहले कभी भी प्रवास-यात्रा नही की थी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रवास-यात्रा करने की प्रवृत्ति जन्मजात होती है और वह पक्षियो के आतरिक-हारमोन-स्रवण चक्र के विकास के दौरान ही उत्पन्न हो गई थी।

पक्षियो के प्रवसन व्यवहार पर वातावरण के ताप का काफी

प्रभाव पडता है। वातावरण का ताप कम हो जाने से प्रवास-यात्रा के लिए पक्षियो की छटपटाहट बढ जाती है जबकि ताप के बढ जाने से वे शात हो जाते हैं।

इसी प्रकार प्रवास-यात्रा की प्रेरणा और पक्षियो के वजन मे होने वाली बढत मे भी सम्बन्ध है। प्रजनन के दौरान पक्षियो का वजन न्यूनतम हो जाता है। प्रजनन के पूर्व बाल उडने के बाद उनका वजन बढने लगता है और प्रवसन बेचैनी के प्रथम सकेत मिलने के समय वजन अधिकतम होता है। अधिकतम वजन दिसम्बर मास तक रहता है। उन पक्षियो का जो वर्ष मे दो बार बालविहीन होते हैं, दूसरी बार बालविहीन होने के समय वजन इतना नही बढता जितना पहली बार बढता है। पर वसत के आगमन पर, पुन प्रवास-यात्रा आरम्भ करने के समय, उनका वजन फिर बढ जाता है पर उतना नही जितना शरद ऋतु मे बढा था।

शरद ऋतु मे प्रवास यात्रा आरम्भ करने के पूर्व पक्षियो की खुराक भी बढने लगती है और प्रवास-यात्रा के एकदम पहले वह सबसे अधिक हो जाती है। नवम्बर और दिसम्बर मे, यात्रा सम्पन्न हो जाने के बाद, वह कम होने लगती है, पर वसत ऋतु मे प्रवास-यात्रा पुन आरम्भ करने से पहले वह फिर बढने लगती है। प्रजनन के दौरान वह कम हो जाती है।

यद्यपि पक्षियो की खुराक का उनके वजन के बढने से सीधा सबध होता है पर खुराक का सबध वसा के भडारन से भी है। प्रवास-यात्रा पर निकलने से पहले पक्षी काफी मात्रा मे वसा भडारित कर लेते हैं। वे काफी मोटे हो जाते हैं। यही वसा यात्रा के दौरान शरीर मे ईंधन का काम करती है। उस दौरान पक्षी का वसा-भडार तेजी से खाली होता जाता है, पर यात्रा के बाद उतनी ही तेजी से पुन भर जाता है। वास्तव मे उस समय वसा की पूर्ति जितनी तेजी से होती है उतनी तेजी से वर्ष मे और कभी नही होती। विचित्र बात यह है कि यात्रा के बाद पक्षी की खुराक मे बहुत वृद्धि नही होती।

इससे वैज्ञानिको ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रवास-यात्रा पर निकलने से पहले पक्षी का शरीर स्वय को यात्रा के लिए तैयार कर लेता है। यात्रा से पहले पक्षी की उपापचयन क्रियायें अपेक्षाकृत मन्द पड जाती हैं।

उन पक्षियो की, जो प्रवास-यात्रा नही करते, खुराक और वसा भडारन मे इस प्रकार की कोई वृद्धि नही होती।

ब्रिटिश पक्षीवैज्ञानिको ने अपने देश की कुछ पक्षी जातियो मे एक विचित्र गुण पाया है। उम जाति के कुछ पक्षी तो निश्चित प्रवास-यात्रा पर जाते हैं, कुछ सर्दी की ऋतु मे भटकते रहते है जबकि शेष भयकर सर्दी मे भी वही रहे आते हैं जहा उन्होने गर्मी बितायी थी। इस सबध मे साग थ्रश, स्टारलिंग, व्हाइट वैगटेल, रॉबिन, ब्लेक बर्ड, कारमोरेन्ट, कर्लू आदि पक्षियो के उदाहरण दिये जाते हैं। अमेरिकन पक्षीवैज्ञानिको ने, उत्तर अमेरिका के भी कुछ पक्षियो, उदाहरणार्थ साग स्पैरो (**मेलोस्पाइजा मेलोडिया**), काऊबर्ड (**मोलोथ्रस आटर**), मे यह गुण पाया है।

वैसे यह एक सुविदित तथ्य है कि वयस्क नरो की अपेछा मादाओ और कम उम्र के नरो मे प्रवास-यात्रा करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वयस्क नर यात्रा पर कम दूर तक जाते हैं और जल्दी ही लौट आते हैं। उत्तर अमेरिका के साग स्पैरो, मॉकिंग बर्ड (**मिमस पालीग्लोटस**) आदि कुछ ऐसे पक्षी है।

ऐसा उन पक्षियो मे भी पाया जाता है जो सर्दियो मे पर्वतो से मैदानो मे आ जाते हैं। **लेगोपस स्कोटिकस** और **लेफोफोरस इम्पेयानस** की मादाये सर्दियो मे, नरो की तुलना मे अधिक नीचे उतर आती हैं।

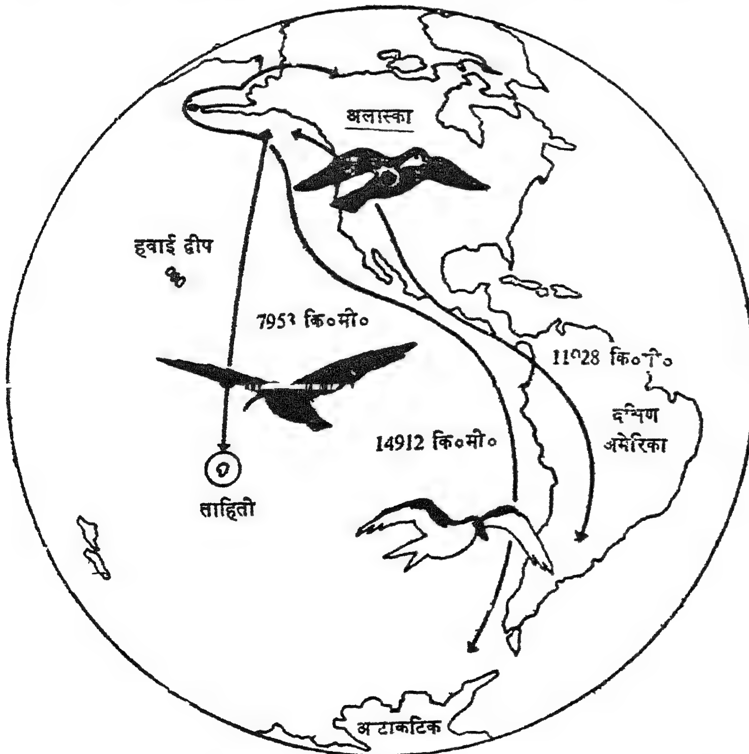
पक्षीवैज्ञानिको के अनुसार उक्त प्रवृत्ति के कारण है नर योन हारमोन। इन हारमोनो के प्रभाव वयस्क नरो पर शरद ऋतु मे अधिक पडते है। शरद ऋतु मे ही अधिकाश पक्षी गर्म देशो की ओर अपनी प्रवास-यात्रा आरम्भ करते है।

प्रवास-यात्राओ के अध्ययन कैसे किये जाते है

जैसा कि आप ऊपर पढ चुके हैं, पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे लोग प्राचीन समय से ही अनुमान लगाते रहे हैं। ये अनुमान खुले क्षेत्र मे पक्षियो की उडानो को लगातार लम्बे समय तक देखने के बाद लगाये थे। यह विधि काफी निर्भरणीय समझी जाती है पर अब पक्षियो को खाली आँख से ही नही देखा जाता वरन् दूरबीन आदि यन्त्रो की सहायता भी ली जाती है। निश्चय ही केवल देखकर ही

पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे सही अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है। इसलिए अन्य तकनीको की मदद ली जाती है।

पक्षियो का अवलोकन करने से लोगो के मन मे सबसे पहले यह सवाल उठा कि क्या एक ही पक्षी बार बार आता है या हर बार नये-नये पक्षी आते है ? इसका जवाब ढूढने के लिए कुछ पक्षियो को पकडा गया और उनको ऐसे पक्के रगो से, जो वर्षा और धूप से नही छूटते थे, रग कर छोड दिया गया। सफेद रग के पक्षियो को तो आसानी से रगा जा सकता था पर चितकबरे, काले, लाल या हरे रग के पक्षियो को रगना मुश्किल था। उन पर दूसरा रग आसानी से नही चढ पाता था। पर इससे पता चला कि कुछ पक्षी हर साल ही एक खास मौसम



गोल्डन प्लोवर (ऊपर), तहीतिअन करलू (मध्य) और आर्कटिक टर्न (नीचे) प्रतिवर्ष हजारो किलोमीटर लम्बी प्रवास यात्राये करते है।

उन पक्षियो की, जो प्रवास-यात्रा नही करते, खुराक और वसा भडारन मे इस प्रकार की कोई वृद्धि नही होती ।

ब्रिटिश पक्षीवैज्ञानिको ने अपने देश की कुछ पक्षी जातियो मे एक विचित्र गुण पाया है। उम जाति के कुछ पक्षी तो निश्चित प्रवास-यात्रा पर जाते हैं, कुछ सर्दी की ऋतु मे भटकते रहते है जबकि शेष भयकर सर्दी मे भी वही रहे आते हैं जहा उन्होने गर्मी बितायी थी। इस सबध मे साग थ्रश, स्टारलिग, व्हाइट वैगटेल, रॉबिन, ब्नेक बर्ड, कारमोरेन्ट, कर्लू आदि पक्षियो के उदाहरण दिये जाते हैं । अमेरिकन पक्षीवैज्ञानिको ने, उत्तर अमेरिका के भी कुछ पक्षियो, उदाहरणार्थ साग स्पैरो (**मेलोस्पाइजा मेलोडिया**), काऊबर्ड (**मोलोथ्रस आटर**), मे यह गुण पाया है ।

वैसे यह एक सुविदित तथ्य है कि वयस्क नरो की अपेछा मादाओ और कम उम्र के नरो मे प्रवास-यात्रा करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वयस्क नर यात्रा पर कम दूर तक जाते है और जल्दी ही लौट आते हैं। उत्तर अमेरिका के साग स्पैरो, मॉकिग बर्ड (**मिमस पाली ग्लोटस**) आदि कुछ ऐसे पक्षी है ।

ऐसा उन पक्षियो मे भी पाया जाता है जो सर्दियो मे पर्वतो से मैदानो मे आ जाते हैं। **लेगोपस स्कोटिकस** और **लेफोफोरस इम्पेयानस** की मादाये सर्दियो मे, नरो की तुलना मे अधिक नीचे उतर आती हैं।

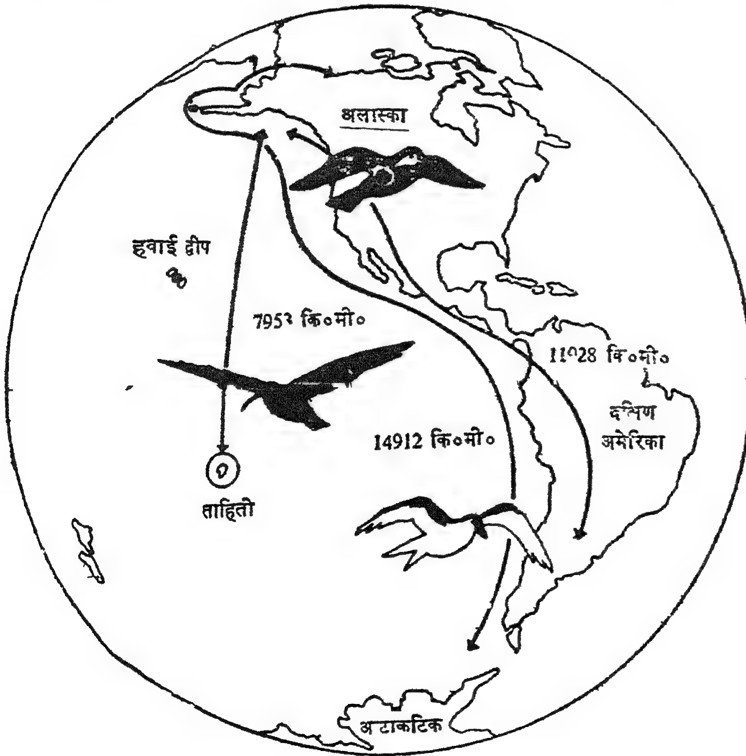
पक्षीवैज्ञानिको के अनुसार उक्त प्रवृत्ति के कारण है नर योन हारमोन । इन हारमोनो के प्रभाव वयस्क नरो पर शरद ऋतु मे अधिक पडते हैं। शरद ऋतु मे ही अधिकाश पक्षी गर्म देशो की ओर अपनी प्रवास-यात्रा आरम्भ करते है।

प्रवास-यात्राओ के अध्ययन कैसे किये जाते है

जैसा कि आप ऊपर पढ चुके है, पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे लोग प्राचीन समय से ही अनुमान लगाते रहे हैं। ये अनुमान खुले क्षेत्र मे पक्षियो की उडानो को लगातार लम्बे समय तक देखने के बाद लगाये थे । यह विधि काफी निर्भरणीय समझी जाती है पर अब पक्षियो को खाली आँख से ही नही देखा जाता वरन् दूरबीन आदि यन्त्रो की सहायता भी ली जाती है। निश्चय ही केवल देख कर ही

पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे सही अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन होता है। इसलिए अन्य तकनीको की मदद ली जाती है।

पक्षियो का अवलोकन करने से लोगो के मन मे सबसे पहले यह सवाल उठा कि क्या एक ही पक्षी बार बार आता है या हर बार नये-नये पक्षी आते है? इसका जवाब ढूढने के लिए कुछ पक्षियो को पकडा गया और उनको ऐसे पक्के रगो से, जो वर्षा और धूप से नही छूटते थे, रग कर छोड दिया गया। सफेद रग के पक्षियो को तो आसानी से रगा जा सकता था पर चितकबरे, काले, लाल या हरे रग के पक्षियो को रगना मुश्किल था। उन पर दूसरा रग आसानी से नही चढ पाता था। पर इससे पता चला कि कुछ पक्षी हर साल ही एक खास मौसम



गोल्डन प्लोवर (ऊपर), तहीतिअन करलू (मध्य) और आकटिक टन (नीचे) प्रतिवप हजारो किलोमीटर लम्बी प्रवास यात्राये करत ह।

मे आते हैं। बाद मे सोचा गया कि पक्षियो की टागो मे विशेष किस्म के छल्ले पहना दिये जाये और उन पर कुछ विशेष सकेत अकित कर दिये जाये जिससे उन पक्षियो की गतिविधियो पर आसानी से नजर रखी जा सके। छल्ले बनाने और उन्हे पक्षियो को पहनाने की तकनीको को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया डेनमार्क के वैज्ञानिक एच० सी० सी० मार्टेनसन ने, सन् 1890 मे।

पक्षियो के पजो मे छल्ले फसाकर सदेश भेजने का तरीका काफी पुराना है। हमारे देश मे भी कबूतरो की मदद से दूर स्थानो मे रहने वाले व्यक्तियो को सदेश भेजे जाते रहे है। ऐसा युद्ध के दौरान ही नही, शाति काल मे भी किया जाता रहा है। अन्य देशो मे बाज, स्टार्क, हेरोन आदि पक्षियो को भी इस काम के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस सम्बन्ध मे एक दिलचस्प घटना का उल्लेख अक्सर किया जाता है यद्यपि कुछ लोग इसे मात्र मनगढन्त कहानी ही मानते हैं। डेनमार्क के एक सज्जन ने एक लगलग के पजे मे एक सन्देश बाध दिया। सर्दियो मे वह प्रवास-यात्रा पर भारत मे, वाराणसी शहर मे, आ उतरा। यहा वह सदेश एक अग्रेज रमणी के हाथ लग गया। उसने उसका उत्तर उसी लगलग के पजे मे फसा दिया। गर्मियो के आरम्भ मे वह वापस डेनमार्क पहुचा। भाग्यवशात् उसके पजे मे फसा सदेश उसी व्यक्ति को मिल गया जिसने पहले सदेश भेजा था। उसने अपना उत्तर, फिर से उसी लगलग को सौंप दिया। इस बार भी पुरानी कहानी की पुनरावृत्ति हो गई और इस कहानी का सुखद परिणाम हुआ डेनमार्क के युवक का वाराणसी स्थित अग्रेज रमणी से विवाह।

मार्टेनसन ने पहले जस्त के छल्ले का उपयोग किया था। उस पर क्रम सख्या, उस स्थान का नाम, जहा पक्षी को छल्ला पहनाया गया था, और वर्ष अकित थे। ये छल्ले स्टारलिगो को पहनाये गये थे। लगभग उसी समय इग्लैड मे लार्ड विलियम पर्सी ने छल्ले पहनाने का कार्य शुरू किया। पर उन छल्लो पर सख्या अकित नही थी।

बाद मे उन्होने छल्ले बनाने के लिए एलमीनियम का उपयोग करना शुरू कर दिया और उस समय से लेकर आज तक एलूमीनियम (उसकी मिश्र धातु) का उपयोग किया जाना है। एलूमीनियम मिश्र धातुओ के छल्ले हल्के और सस्ते होते हैं, आसानी से पहनाये जा सकते है और इनसे पक्षियो को कोई हानि नही पहुचती। शीघ्र ही छल्ला

पहनाने की विधि ... त प्रचलित हो गई।

आज ससार के ... देशो मे विभिन्न जातियो के प्रवासी-पक्षियो को नियमित रूप से छ... पहनाये जाते हैं और उनकी उडानो के पूरे विवरण प्राप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इन पक्षियो मे पेन्गुइन जैसे पक्षी भी शामिल हैं। वास्तव मे पेन्गुइनो को छल्ले पहनाने की शुरुआत वर्ष 1908 मे हु... द्वितीय फ्रेंच अटाकटिक अभियान के दौरान, हो गई थी।

समझा जाता है कि आजकल ससार के विभिन्न देशो मे प्रतिवर्ष लगभग 10,00,000 पक्षियो को छल्ले पहनाये जाते हैं। हमारे देश मे भी यह कार्य नियमित रूप से किया जाता है। हमारे जगतप्रसिद्ध, पक्षी-वैज्ञानिक, डा० सलीम अली, छल्ले पहनाने के कार्य मे बहुत रुचि लेते थे। उनके अनुसार पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे जानकारिया उपलब्ध करने के लिए यह विधि बहुत उपयुक्त है। उन्होने भारत मे प्रवास-यात्राओ पर आने वाले पक्षियो को छल्ले पहनाने के बारे मे भी अनेक प्रयोग किये थे। आर्थिक सहायता के अभाव मे पहले-पहल उन्होने स्वय छल्ले बनाए भी थे। उनके ही प्रयासो के फलस्वरूप भरतपुर का घाना पक्षी विहार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का वलयन (छल्ला पहनाने का) केन्द्र बन सका।

आजकल पक्षियो को जो छल्ले पहनाये जाते हैं वे बहुत हल्के और पक्षियो के आकार के अनुरूप होते हैं। बाज, गिद्ध, आदि पक्षियो के लिए बडे छल्ले होते हैं और हेमिंग बर्ड जैसी चिडियाओ के लिए छोटे। प्रत्येक छल्ले पर (छल्ला) पहनाने वाली सस्था का नाम और पता, एक क्रम सख्या तथा पक्षी विशेष के लिए एक अक खुदा होता है। साथ ही उस सस्था को सूचना देने हेतु अनुरोध भी होता है। आजकल अग्रेजी ही ससार के अधिकाश देशो मे समझी जाती है। इसलिए यह सब अग्रेजी मे ही खुदा रहता है।

यहा यह बता देना युक्तिसगत होगा कि छल्ले पहनाने से उसी समय प्रवासी पक्षियो के बारे मे जानकारिया उपलब्ध हो सकती हैं जब छल्ले पहनाने, उनकी गतिविधियो पर ध्यान रखने तथा उनको पुन प्राप्त करने हेतु एक योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाये। पक्षियो को केवल छल्ले पहना देने से ही उनके बारे मे कोई जानकारी प्राप्त नही होती। विशेष केन्द्रो से छल्ले पहने पक्षियो की गतिविधियो

मे आते हैं। बाद मे सोचा गया कि पक्षियो की टागो मे विशेष किस्म के छल्ले पहना दिये जाये और उन पर कुछ विशेष सकेत अकित कर दिये जायें जिससे उन पक्षियो की गतिविधियो पर आसानी से नजर रखी जा सके। छल्ले बनाने और उन्हे पक्षियो को पहनाने की तकनीको को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया डेनमार्क के वैज्ञानिक एच० सी० सी० मार्टेनसन ने, सन् 1890 मे।

पक्षियो के पजो मे छल्ले फसाकर सदेश भेजने का तरीका काफी पुराना है। हमारे देश मे भी कबूतरो की मदद से दूर स्थानो मे रहने वाले व्यक्तियो को सदेश भेजे जाते रहे है। ऐसा युद्ध के दौरान ही नही, शाति काल मे भी किया जाता रहा है। अन्य देशो मे बाज, स्टार्क, हेरोन आदि पक्षियो को भी इस काम के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा है। इस सम्बन्ध मे एक दिलचस्प घटना का उल्लेख अक्सर किया जाता है यद्यपि कुछ लोग इसे मात्र मनगढन्त कहानी ही मानते हैं। डेनमार्क के एक सज्जन ने एक लगलग के पजे मे एक सन्देश बाध दिया। सर्दियो मे वह प्रवास-यात्रा पर भारत मे, वाराणसी शहर मे, आ उतरा। यहा वह सदेश एक अग्रेज रमणी के हाथ लग गया। उसने उसका उत्तर उसी लगलग के पजे मे फसा दिया। गर्मियो के आरम्भ मे वह वापस डेनमार्क पहुचा। भाग्यवशात् उसके पजे मे फसा सदेश उसी व्यक्ति को मिल गया जिसने पहले सदेश भेजा था। उसने अपना उत्तर, फिर से उसी लगलग को सौप दिया। इस बार भी पुरानी कहानी की पुनरावृत्ति हो गई और इस कहानी का सुखद परिणाम हुआ डेनमार्क के युवक का वाराणसी स्थित अग्रेज रमणी से विवाह।

मार्टेनसन ने पहले जस्त के छल्ले का उपयोग किया था। उस पर क्रम सख्या, उस स्थान का नाम, जहा पक्षी को छल्ला पहनाया गया था, और वर्ष अकित थे। ये छल्ले स्टारलिगो को पहनाये गये थे। लगभग उसी समय इग्लैड मे लार्ड विलियम पर्सी ने छल्ले पहनाने का कार्य शुरू किया। पर उन छल्लो पर सख्या अकित नही थी।

बाद मे उन्होने छल्ले बनाने के लिए एलमीनियम का उपयोग करना शुरू कर दिया और उस समय से लेकर आज तक एलूमीनियम (उसकी मिश्र धातु) का उपयोग किया जाना है। एलूमीनियम मिश्र धातुओ के छल्ले हल्के और सस्ते होते हैं, आसानी से पहनाये जा सकते है और इनसे पक्षियो को कोई हानि नही पहुचती। शीघ्र ही छल्ला

पहनाने की विधि [illegible]त प्रचलित हो गई।

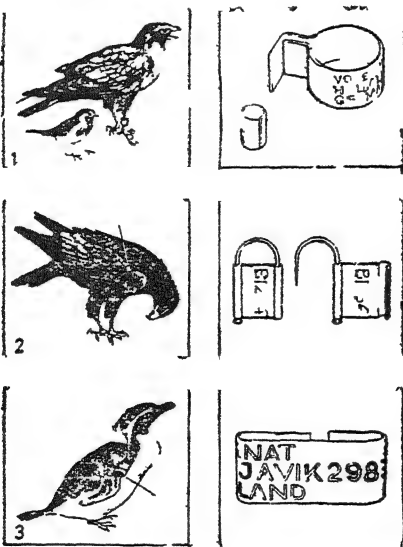
आज ससार के [illegible]क देशो मे विभिन्न जातियो के प्रवासी-पक्षियो को नियमित रूप से छ[illegible] पहनाये जाते हैं और उनकी उडानो के पूरे विवरण प्राप्त करने के प्रयत्न किये जाते हैं। इन पक्षियो मे पेन्गुइन जैसे पक्षी भी शामिल हैं। वास्तव मे पेन्गुइनो को छल्ले पहनाने की शुरुआत वर्ष 1908 मे हु[illegible] द्वितीय फ्रेंच अटार्कटिक अभियान के दौरान, हो गई थी।

समझा जाता है कि आजकल ससार के विभिन्न देशो मे प्रतिवर्ष लगभग 10,00,000 पक्षियो को छल्ले पहनाये जाते हैं। हमारे देश मे भी यह कार्य नियमित रूप से किया जाता है। हमारे जगतप्रसिद्ध, पक्षी-वैज्ञानिक, डा० सलीम अली, छल्ले पहनाने के कार्य मे बहुत रुचि लेते थे। उनके अनुसार पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे जानकारिया उपलब्ध करने के लिए यह विधि बहुत उपयुक्त है। उन्होने भारत मे प्रवास-यात्राओ पर आने वाले पक्षियो को छल्ले पहनाने के बारे मे भी अनेक प्रयोग किये थे। आर्थिक सहायता के अभाव मे पहले-पहल उन्होने स्वय छल्ले बनाए भी थे। उनके ही प्रयासो के फलस्वरूप भरतपुर का घाना पक्षी विहार अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का वलयन (छल्ला पहनाने का) केन्द्र बन सका।

आजकल पक्षियो को जो छल्ले पहनाये जाते हैं वे बहुत हल्के और पक्षियो के आकार के अनुरूप होते हैं। बाज, गिद्ध, आदि पक्षियो के लिए बडे छल्ले होते हैं और हेमिग बर्ड जैसी चिडियाओ के लिए छोटे। प्रत्येक छल्ले पर (छल्ला) पहनाने वाली सस्था का नाम और पता, एक क्रम सख्या तथा पक्षी विशेष के लिए एक अक खुदा होता है। साथ ही उस सस्था को सूचना देने हेतु अनुरोध भी होता है। आजकल अग्रेजी ही ससार के अधिकाश देशो मे समझी जाती है। इसलिए यह सब अग्रेजी मे ही खुदा रहता है।

यहा यह बता देना युक्तिसगत होगा कि छल्ले पहनाने से उसी समय प्रवासी पक्षियो के बारे मे जानकारिया उपलब्ध हो सकती हैं जब छल्ले पहनाने, उनकी गतिविधियो पर ध्यान रखने तथा उनको पुन प्राप्त करने हेतु एक योजनाबद्ध तरीके से काम किया जाये। पक्षियो को केवल छल्ले पहना देने से ही उनके बारे मे कोई जानकारी प्राप्त नही होती। विशेष केन्द्रो से छल्ले पहने पक्षियो की गतिविधियो

का नियमित रूप से अवलोकन करना बहुत जरूरी होता है। इसलिए लगभग हर देश मे पक्षियो के प्रवास-पथो पर अनेक अवलोकन केन्द्र स्थापित किये गये हैं। इन केन्द्रो मे पक्षीवैज्ञानिक दूरबीनो तथा अन्य यन्त्रो की मदद से प्रवासी पक्षियो की उडानो का अवलोकन करते रहते है। इन अवलोकनो को रात मे भी करना जरूरी होता है क्योकि अनेक जातियो के पक्षी रात के समय ही उडान भरते है। सागरो मे बने लाइटहाउसो से भी वैज्ञानिक पक्षियो—समुद्री पक्षियो—की उडानो का अवलोकन करते है।



पक्षियो की प्रवास यात्राओ के बारे मे जानने हेतु उनके पैरो मे विशेष छल्ले पहनाये जात है, 1 छोटे पक्षी (राबिन) के लिए छोटा छल्ला, बडे पक्षी बाज के लिए बडा छल्ला,
2 गोल्डन ईगल के लिए छल्ला (खुला और बद)
3 पेंगुइन जैसे पक्षी के लिए फ्लिपर बैड,

इस विषय मे एक बात बताना बहुत जरूरी है कि हर पक्षी को, जिसे छल्ला पहनाया गया हो, पकड पाना सम्भव नही हो पाता। आम तौर से पक्षी मरने या मार दिये जाने के बाद ही पकडे जाते है—जिंदा अवस्था मे शायद ही कभी पकडे जाते हो। यदि वे जिन्दा पकड लिये जाते हैं तो आवश्यक जानकारी नोट कर लेने के बाद फिर से छोड दिये जाते हैं। वैसे इस बारे मे विचित्र बात यह है कि कुछ जातियो के पक्षी अधिक सख्या मे पकडे जाते हैं और कुछ के बहुत कम सख्या मे। उदाहरणार्थ ब्रिटेन मे किये गये प्रयोगो मे हस (ऐंसर ऐंसर) की पुन प्राप्ति 24 3 प्रतिशत, रहवारा (एयथ्या फुलीगुली) की 20, सीखपर

(एनस एक्यूटा) की 17 2, नील सिर (एनस प्लैटिरिन्कस) की 10 6 व ब्लैक बर्ड (टूरडस मेरूला) की 3 2 तथा लीफ वारबलर की 0 2 प्रतिशत पायी गई।

पक्षियो को छल्ला पहनाने मे बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए। पहले उनका, विशेष रूप से कम उम्र के पक्षियो का, कई दिनो तक अवलोकन करना चाहिए। वास्तव मे छल्ले एक खास उम्र के पक्षियो को ही पहनाने चाहिए। अगर उनकी उम्र कम होती है तो छल्ले उनकी टाँगो मे से निकल सकते है (छल्ले वयस्क पक्षियो के नापो के अनुसार होते है)। यदि पक्षियो की उम्र अधिक होती है तब वे डर कर घोसला छोडकर भाग सकते है। इस बारे मे यह भी खतरा रहता है कि पक्षी उन बच्चो को, जिनको छल्ले पहना दिये गये हो, अपने घोसलो से बाहर धकेल दे, क्योकि पक्षी आम तौर से किसी भी बाहरी वस्तु का अपने घोसले मे रखना पसन्द नही करते। यदि वयस्क पक्षियो को छल्ले पहनाये जाते हैं तो वे उन्हे टाग से निकालने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार छल्ले पहनाना आसान नही होता।

वैसे छल्ला पहनाते समय यह ध्यान अवश्य रखा जाता है कि पक्षी को कोई क्षति न पहुचे। छल्ले पहनाने का उपयुक्त समय है पक्षियो के प्रवास-यात्रा पर निकलने के काफी दिन पहले।

छल्ला पहनाने से पहले पक्षी-विशेष के बारे मे पूरी जानकारी—उसका वश, जाति, किस्म तथा लिंग, उम्र, स्वास्थ्य की स्थिति, यौन रूप से परिपक्वता, गर्भ, आकार, वजन तथा छल्ले पर अकित सख्या, सकेताक आदि सावधानी पूर्वक एक रजिस्टर मे नोट कर ली जाती है।

आजकल बड पक्षियो को इतने बडे छल्ले भी पहनाये जाते हैं कि उन पर अकित जानकारी को बाइनोक्यूलर की मदद से उस समय भी पढा जा सके जब पक्षी उड रहा हो। इस सिलसिले मे पक्षियो के पखो मे प्लेट फसाने के प्रयास भी किये गये हैं।

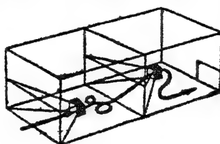
छल्ले या प्लेट पहनाने के लिए पक्षियो को पकडना जरूरी होना है। इसके लिए विशेष किस्म के जाल या ट्रैप इस्तेमाल किये जाते हैं। बतख, हस आदि पक्षियो को पकडने के लिए 'हेलिगोलैड ट्रैप' का अधिक उपयोग किया जाता है। यह एक बडा, चाडी के आकार का, ट्रैप होता है जिससे आसानी से बडी सख्या मे पक्षियो को पकडा जा

सकता है। यह ट्रैप सबसे पहले उत्तर सागर मे स्थित द्वीप, हेलिगोलैंड, मे विकसित किया गया था। इसीलिए इसे 'हेलिगोलैंड ट्रैप' कहते हैं।

पक्षियो को पकडने के बाद आम तौर से उन्हे कोई बेहोशी की दवा—ग्लूकोरल, क्लोरालोस आदि—देकर कुछ देर के लिए बेहोश कर लिया जाता है। उस अवस्था मे ही उन्हे छल्ला पहनाया जाता है।

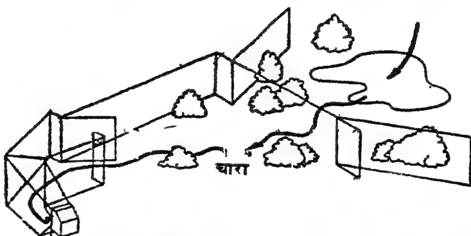
विभिन्न देशो के पक्षी-वैज्ञानिको ने काफी सोच-विचार करने के बाद इन छल्लो के बारे मे कई बाते तय की हैं जिन्हे सब देश मानते हैं। उन्होने यह तय किया है कि पक्षी के पैर मे छल्ला चढाने की सूचना ससार के लगभग हर देश को भेज दी जाये। इससे छल्ले वाले पक्षी को

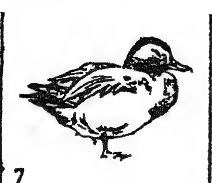


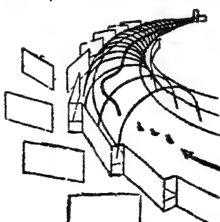


5 एक छोटा पक्षी और उसको पकड़ने के लिये फन्दा 6 अमेरिकी राबिन और उसको फसाने के लिये विशेष गृह 7 बत्तख को लुभाने की विशेष व्यवस्था 8 गूज को पकड़ने का जाल

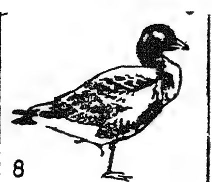


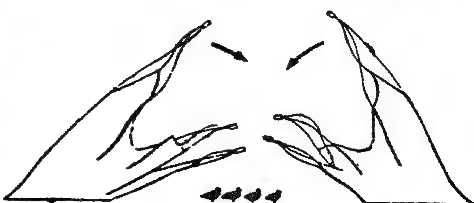












पकड लिये जाने पर उसके बारे मे सूचना उस देश की सस्था को, जहा छल्ला चढाया गया था, भेजी जा सके। इस प्रकार की सूचना भेजने वाले को कुछ इनाम दिया जाता है। साथ ही उस व्यक्ति का नाम शोध पत्रो, लेखो आदि मे भी उल्लिखित किया जाता है।

आवाज—पक्षियो के बारे मे, विशेष रूप से उन पक्षियो के बारे मे जो रात के समय उडान भरते हैं, उडते समय की जाने वाली विशेष आवाज (फ्लाइट कॉल) से भी जानकारी प्राप्त की जाती है। उस समय भिन्न-भिन्न जाति के पक्षी अलग-अलग तरीको से आवाज निकालते हैं। वैज्ञानिको ने विभिन्न जातियो के पक्षियो की आवाजें पहचान ली हैं और उनके आधार पर, रात मे भी वे यह अन्दाज लगा लेते हैं कि किस जाति के कितने पक्षी, किस दिशा मे, यात्रा कर रहे हैं। इसी आधार पर **हायलोसिकला** जाति के पक्षियो को आसानी से पहचाना जा सका है।

कुछ दशक पूर्व ग्रैबर और कोक्रेन नामक वैज्ञानिको ने एक ऐसी तकनीक विकसित की जिससे तीन किलोमीटर से भी अधिक ऊँचाई पर उड रहे पक्षियो को भी, उनकी आवाज की मदद से, पहचाना जा सकता है (बिना किसी मदद के हमारा कान जितनी दूरी तक आवाज सुन सकता है उससे लगभग पाच गुनी अधिक दूरी तक)। इस तकनीक मे एक माइक्रोफोन का जो परावलयी परावर्तक (पैराबोलिक रिफ्लेक्टर) के केन्द्र मे रखा होता है, तथा एक एम्प्लीफायर और टेप रिकार्डर का इस्तेमाल किया जाता है। टेप रिकार्डर मे पक्षियो की आवाजें अकित हो जाती हैं जिन्हे बाद मे सुविधानुसार सुना जा सकता है।

रडार—एक विचित्र बात यह है कि पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे दूसरे विश्व युद्ध ने भी, परोक्ष रूप से, बहुत जानकारी प्रदान की थी। दूसरे विश्व युद्ध मे रडार का पूरा उपयोग किया गया था। जैसा कि आप जानते हैं कि रडार ऐसी इलेक्ट्रानिक युक्ति है जिससे दूरी से, 80 किलोमीटर से भी अधिक दूरी से, वायुयानो, बादलो आदि का आसानी से पता लगाया जा सकता है। युद्ध के दौरान दुश्मन के वायुयानो की टोह लेते समय अक्सर ही वैज्ञानिको को महसूस होता था कि रडार की पकड मे कोई ऐसी "वस्तु" आ जाती जो न तो वायुयान होता और न ही बादल। उस समय ऐसी चीजो को "अज्ञात वस्तु" कहकर छोड दिया जाता था। बाद मे स्विट्जरलैड के वैज्ञानिक, अर्नेस्ट

सटर, ने यह पता लगाया कि ये अज्ञात वस्तुयें पक्षियो के बडे-बडे झुड थे जो आकाश मार्ग से दिन-रात गुजरते रहते थे। सटर ने अपने प्रयोगो से यह भी सिद्ध कर दिया कि रडार की मदद से छोटे पक्षियो के छोटे-छोटे झुडो की भी सही स्थिति ज्ञात की जा सकती है। युद्ध के बाद रडार की मदद से इन झुडो के गहन अध्ययन किये गये।

आजकल पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के अवलोकन के लिए रडार का इस्तेमाल बहुतायत से किया जाता है।

पक्षियो की इन यात्राओ के बारे मे एक अन्य इलेक्ट्रानिक युक्ति ने भी बहुत मदद दी है। यह है सूक्ष्म ट्रासमिटर। बहुत छोटे-छोटे ट्रासमिटरो को पक्षियो विशेष रूप से बडे शिकारी पक्षियो के पैरो पखो आदि मे फिट कर दिया जाता है। ये ट्रासमिटर पक्षी की हर गति-विधि की सूचना रेडियो सकेतो द्वारा केन्द्र मे लगे रिसीवर को भेजते रहते है। इन सकेतो की मदद से पक्षी की स्थिति और शारीरिक दशा मालूम की जा सकती है।

आजकल वायुयान मे बैठकर उडते हुए पक्षी समूहो का पीछा करके भी उनके बारे मे जानकारिया हासिल की जाती हैं।

यात्रा-पथ

छल्ले पहने पक्षियो की पुन प्राप्ति के आधार पर तैयार किये प्रवास-यात्रा-पथ मानचित्र आम तौर से सही नही होते। इसका कारण यह भ्राति है कि पक्षी सीधी उडाने भरते हैं। हमेशा ऐसा नही होता। यह तथ्य है कि वे अपने गतव्य को ध्यान मे रखकर ही उडान भरते हैं पर हमेशा सबसे सीधा पथ नही अपनाते। अनेक बार यात्रा आरम्भ करते समय पक्षी एकदम विपरीत दिशा मे उडान भरते हैं। फिर मार्ग मे अपनी दिशा बदल देते हैं। ऐसा वे अनेक बार करते हैं। इसी प्रकार वे वक्रीय मार्ग से भी उडान भरते है।

कुछ जाति के पक्षियो, उदाहरणार्थ लगलग, के झुडो की उडते समय चौडाई बहुत कम होती है। वे फैलकर नही उडते। उनके उडने के मार्ग भी सुनिश्चित होते है। वे उन्ही मार्गों पर उडान भरते हैं। आम तौर से वे बडी जल राशियो को पार करना पसन्द नही करते। यदि ऐसा करना पड जाता है तब वे बहुत सकरे झुडो मे ही उन्हे पार करते है। प्रवास-यात्रा के दौरान सारस भी ऐसा ही करते हैं। यूरोप के शिकारी पक्षी भी जब वे प्रवास-यात्रा पर निकलते है तब पूर्वी

भूमध्यसागर पार करते समय इसी प्रकार व्यवहार करते हैं। उत्तर अमेरिका मे पाये जाने वाला पक्षी (जोनोट्रिकिया क्वेरूला) प्रवास-यात्रा के दौरान थल खडो को पार करते समय बहुत कम चौडे झुडो मे उडान भरता है।

अधिकाश पक्षी विभिन्न पथो पर से उडान भरते हैं। ये पथ काफी दूर दूर होते है। इन पक्षियो के समूह बहुत फैल जाते हैं। यह फैलाव पक्षियो की जातियो के अनुसार ज्यादा होता है। साथ ही हर पथ के साथ कुछ द्वितीयक पथ भी होते हैं। ये द्वितीयक पथ स्थानीय परि-स्थितियो पर निर्भर होते है।

जैसा कि आप पहले पढ चुके हैं पक्षी आम तौर से कम ऊचाई पर उडान पसन्द करते हैं। पर्वतो को पार करते समय वे साधारणतया नदी-घटियो मे से उडान भरते है। साइबेरिया से हमारे देश मे आने वाले अनेक जातियो के पक्षी सिधु नदी की घाटी मे से उडकर आते हैं। वसन्त की प्रवास-यात्रा के दौरान पक्षी नदी घाटियो को अधिक पसन्द करते है क्योकि उस समय उन्हे लौटने की "जल्दी" होती है।

हमारे देश मे ही आने वाली कुछ बतखे, हस आदि हिमालय की ऊची-ऊची चोटियो पर से उडान भरते हैं। ऐसा वे उस समय भी करते हैं जब उन्हे, विकल्प के रूप मे, कम ऊचाई वाले, अपेक्षाकृत कही सुगम पथ, भी उपलब्ध होते है।

प्रवास-यात्राओ मे विभिन्न जातियो के पक्षियो की उडान गतिया भिन्न-भिन्न होती हैं। अधिकाश जातियो के पक्षी खुले मैदान पार करते समय अपेक्षाकृत तेज गति से उडते है क्योकि वहा शिकारी पक्षियो के आक्रमण की सम्भावना अधिक रहती है। पर जगल पर से उडान भरते समय उनकी गति कम हो जाती है। एक अकेले पक्षी की गति कम होती है, समूह मे उडने वाले पक्षियो की गति अधिक। मौका पडने पर पक्षी अपनी "सामान्य" गति को लगभग दुगनी तक कर सकते हैं।

प्रवास यात्रा मे आम तौर से पक्षियो की उडान गति, सामान्य उडान की तुलना मे अधिक होती है। कुछ पक्षियो की दोनो उडान गतिया आगे दी जा रही है।

	प्रवास-यात्रा गति (किलोमीटर प्रति घटे)	सामान्य उडान गति (किलोमीटर प्रति घटे)
स्वैलो (**हिरूडो रसिटका**)	55-60	48-50
रुक (**कोरवस फ्रूमिलेगस**)	60-72	48-56
लेपविग (**वैनेलस वैनेलस**)	64-72	48 64

यद्यपि अबाबील, मार्टिन जैसे कुछ पक्षी उडते-उडते ही शिकार कर लेते है (कीडो आदि को पकड लेते है) पर अधिकाश पक्षी ऐसा नही कर पाते। इसलिए यदि वे भोजन प्राप्त करने के लिए यात्रा के बीच मे ठहरते नही है तब वे भूखे ही रहे आते है। वास्तव मे अनेक पक्षी बिना कुछ खाये-पीये ही लम्बी-लम्बी उडाने भर लेते है। स्केडेनेविया से ब्रिटेन मे आने वाले थलीय पक्षी 350 से 650 किलोमीटर तक की दूरी, बिना रुके ही, तय करते है। उत्तर अमेरिका के प्रवासी पक्षी दक्षिण की ओर जाते समय 800 से 1,000 किलोमीटर तक लम्बी उडाने भरते हैं। गौरेया और हमिंग बर्ड जैसे छोटे पक्षी भी लम्बी-लम्बी उडाने भर लेते है पर सबसे अधिक लम्बी लगातार उडान अमेरिकी गोल्डन प्लोवर की होती है। यह अलास्का से हवाई द्वीप तक की 3300 किलोमीटर की दूरी सागर पर से लगातार उडकर ही तय करता हैं। रास्ते मे वह कही नही रुकता।

इस प्रकार यदि पक्षी एक सी गति से उडते जाये तो वे काफी जल्दी अपने गतव्य स्थान पर पहुच जाये। पर आम तौर पर ऐसा नही होता। पक्षियो को यात्राओ के दौरान लम्बे समय तक भोजन प्राप्त करने और आराम करने के लिए रुकना पडता है। वे दिन मे औसतन 6 से 9 घटे उडान भरते है। अनेक बार उन्हे रात को आराम करना पडता है। उदाहरण के तौर पर सर्दी के दिनो मे उत्तर यूरोप से भारत आने वाला काले सिर का (ब्लैक हैडेड) बटिंग (**एम्बेरीजा मेल-नोसेफला**) को अपनी 990 किलोमीटर की यात्रा मे सात दिन-रात लग जाते है। इस दौरान वह 2 राते उडान मे बिताता है, 5 राते आराम करता है और 7 दिन भोजन करता रहता है।

आम तौर से शरद ऋतु की प्रवास-यात्रा मे उडान गति अपेक्षाकृत

कम होती है और वसन्त ऋतु मे अधिक। इसका कारण यह है कि अधिकाश पक्षी गर्मियो मे ही प्रजनन करते है। इसके लिए उन्हे पहले घोसले बनाने होते है। इसलिए वसन्त ऋतु मे अपने ग्रीष्म आवास की ओर लौटते समय वे बहुत जल्दी मे होते हैं।

दिशा निर्धारण

एक प्रश्न सदा से ही वैज्ञानिको के लिए समस्या बना हुआ है। पक्षी हजारो किलोमीटर लम्बी उडानो के दौरान अपनी दिशा कैसे निर्धारित करते है जिससे हर वर्ष वे एक ही स्थान पर पहुच जाते है। इस सबध में लोगो ने कबूतरो का अवलोकन किया है। कबूतर सैकडो किलोमीटर दूर छोड दिये जाने पर भी अपने घर पहुच जाता है। वह कदाचित ही कभी रास्ता भूलता हो। पर ऐसी यात्राये कराने से पहले कबूतरो को प्रशिक्षित करना जरूरी होता है। निश्चय ये कबूतरो की प्रवास-यात्रायें नही होती।

प्रवास-यात्रा करने वाले पक्षी बहुत बडी सख्या मे निकलते हैं— आम तौर से उनकी पूरी आबादी ही प्रवास-यात्रा पर नियमित रूप से निकलती है। उसमे बच्चे, वयस्क, बूढे, तथा नर और मादा सब प्रकार के पक्षी होते हैं। हर बार समूह मे ऐसे पक्षियो की सख्या काफी होती है जो जीवन मे पहली बार प्रवास-यात्रा कर रहे होते है।

पक्षीवैज्ञानिको ने अपने अध्ययनो मे यह भी पाया है, वे पक्षी भी जिन्हे पिजरो मे बद कर दिया जाता है, प्रवास-यात्रा का समय आ जाने पर उस दिशा की ओर मुह करके उडान भरने की कोशिश करते है जिस दिशा मे उनकी जाति के अन्य पक्षी प्रवास-यात्रा करते है।

आरम्भ मे कुछ पक्षीवैज्ञानिको ने यह सुझाया था कि प्रवास-यात्रा के दौरान पक्षी अपनी दिशा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र और गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र की मदद से निर्धारित करते है। पर कुछ वैज्ञानिक इस मत से सहमत नही थे। उन्होने इस बारे मे प्रयोग भी किए। इनमे उन्होने पक्षियो के पिंजरो के इर्द-गिर्द शक्तिशाली चुम्बकें रखी और पक्षियो के पखो मे चुम्बकीय प्लेटे लगायी जिससे पक्षियो पर पडने वाले पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के प्रभावो मे सशोधन हो सकें। पर इनसे पक्षियो के उडान की दिशा पर कोई प्रभाव नही पडा।

आज अधिकाश वैज्ञानिक यह मानते है कि पक्षी अपनी उडान-

दिशा पृथ्वी के चुम्बकीय/गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रो के आधार पर निर्धारित नही करते ।

इसी प्रकार पक्षी धरती पर स्थित लैंडमार्कों से भी अपनी दिशा निर्धारित नही करते । अनेक जातियो के पक्षी सागरो पर से, जहा कोई दृश्य-लैंडमार्क नही होता, बहुत लम्बी-लम्बी उडाने भरते है । ऐसे ही कुछ पक्षी निर्जन मरुस्थलो पर से भी यात्रा करते हैं । वे दिन मे भी यात्रा करते है और रात मे भी । जैसा कि आप पढ चुके है अनेक जाति के पक्षी बिना रुके, लगातार, दिन-रात यात्रा करते रहते है ।

प्रवास-यात्रा के दौरान पक्षी अपनी दिशा कैसे निर्धारित करते हैं इस बारे मे अनेक वैज्ञानिको ने प्रयोग किए हैं । पर इनमे जर्मन पक्षी वैज्ञानिक, गुस्टाव क्रैमर, ने सबसे अधिक योग दिया है । उन्होने इस विषय मे 1950 के दशक मे वर्षों तक प्रयोग किए थे ।

अपने प्रयोगो मे उन्होने कुछ जगली स्टरलिंगो को एक पिंजरे मे बन्द कर दिया । उनकी नियमित प्रवास-यात्रा का समय आने पर क्रैमर ने पाया कि स्टरलिंग उस दिशा की ओर मुह करके बैठ गए जिस दिशा मे वे यदि आजाद होते तो प्रवास-यात्रा पर उडते । इस प्रयोग मे वह दिशा दक्षिण-पश्चिम थी । फिर क्रैमर ने पिजरो के आसपास इस प्रकार दर्पण लगा दिए जिससे वह प्रतीत हो कि सूर्य विभिन्न दिशाओ मे चमक रहा है । ऐसा होने पर स्टरलिंगो ने अपनी दिशा मे उतने ही कोण पर परिवर्तन किया, जितने कोण पर दर्पणो को घुमाया गया था । पिंजरो को कपडे से इस प्रकार ढक देने से कि आकाश मे बादल छा जाने का भ्रम उत्पन्न हो जाये स्टरलिंग असमजस मे पड गये और वे अपनी दिशा बार-बार बदलने लगे । पर कपडा हटा देने पर (सूर्य फिर चमकने लगने पर) उन्होने अपनी दिशा पुन सही कर ली ।

यद्यपि अब वैज्ञानिक मानते हैं कि पक्षी उडानो के दौरान अपनी दिशा सूर्य की मदद से निर्धारित करते हैं पर इस बारे मे अनेक बाते अब भी रहस्य बनी हुई है । इतना निश्चित है कि पक्षियो मे "सूर्य कम्पास गुण" होता है । वे क्षितिज से सूर्य की सही दूरी माप सकते है । इसलिए वे मौसम के अनुसार सूर्य की दिशा मे होने वाले परिवर्तन का समन्वयन कर लेते हैं और अपनी उडान की दिशा मे तदनुसार सशोधन कर लेते हैं ।

कुछ वैज्ञानिको का यह भी मत है कि उनमे ध्रुवित प्रकाश (पोलो-

राइज्ड लाइट) और पराबैंगनी प्रकाश देखने की क्षमता होती है। हमारी (मनुष्य की) आखो मे ऐसे प्रकाश देखने की क्षमता नही होती।

रात मे उडान भरने वाले पक्षी अपनी दिशा चन्द्रमा और तारो की मदद से निर्धारित करते हैं। इस बारे मे किए गए प्रयोगो मे हैज स्पैरो को एक प्लेनेटैरियम मे रखा गया जिसमे कृत्रिम रूप से रात्रि-आकाश निर्मित किया गया था। वहा पक्षी सही दिशा मे उडते रहे। पर कृत्रिम आकाश मे तारो की स्थिति मे परिवर्तन कर देने से पक्षी धोखे मे पड गए और वे अलग-अलग दिशाओ मे उडने लगे।

अमेरिकी वैज्ञानिक, डोनाल्ड ग्रिफिन, ने भी पक्षियो के दिशा निर्धारण के बारे मे प्रयोग किए है। उन्होने पाया कि पक्षी तीन तरीको से अपने गतव्य स्थानो को पहुचते हैं। अनेक पक्षी यथा घरेलू कबूतर, गैनेट, स्विफ्ट आदि पहले अपने आसपास की वस्तुओ का निरीक्षण करते है। उनसे वे परिचित होने का प्रयत्न करते है और फिर उनके आधार पर अपने गतव्य स्थान की दिशा निर्धारित करते है तथा उसके अनुसार उडान भरते हैं। उनकी 'दृश्यस्मृति' अत्यधिक विकसित होती है।

दूसरे प्रकार के पक्षियो मे एक विशेष दिशा चुनने और उसके अनु-सार लम्बी उडान भरने की क्षमता होती है। इन पक्षियो मे हुडेड क्रो और स्टरलिंग जैसे पक्षी शामिल हैं। इनमे दिशा निर्धारण हेतु जन्म-जात गुण होता है। एक प्रयोग मे कुछ हुडेड क्रो को उनके सामान्य उडान पथ से लगभग 950 किलोमीटर दूर छोडा गया। पर वे अपने उडान पथ के लगभग सामानातर उडते हुए अपने गतव्य स्थान पर जा पहुचे।

तीसरे प्रकार के पक्षियो को कही भी छोडे दिए जाने पर वे तुरन्त ही अपनी स्थिति की जाच करते हैं, अपने प्रजनन स्थल के सदर्भ मे अपने स्थिति अनुमान लगाने का प्रयत्न करते हैं और सही दिशा मे उडान भर लेते हैं। इस सिलसिले मे 18 लेयसन एल्ब्राट्रासो पर प्रयोग किए गए। उन्हे उनके प्रजनन स्थल, उत्तरी प्रशात महासागर मे स्थित मिडवे द्वीप मे, पकडा गया और पिंजरो मे बन्द कर दिया गया। उनमे से कुछ को जापान ले जाकर, कुछ को मार्शल द्वीप समह मे और बाकी को फिलीपीन द्वीपो मे छोडा गया। इनमे से 14 पक्षी शीघ्र ही अपने प्रजनन स्थल पर लौट आये। एक पक्षी जिसे फिलीपीन मे छोडा गया था 32

दिन बाद लगभग 6,400 किलोमीटर की उडान भरने के बाद लौटा।

समुद्री पक्षी

आम तौर से जब हम पक्षियो की चर्चा करते हैं तब हमारे ध्यान में केवल वे पक्षी ही आते हैं जो अपना पूरा जीवन थल पर ही बिताते हैं। पर ऐसे पक्षियो की भी सख्या कम नही है जो सागर के तटो पर अथवा खुले सागरो मे रहते है। तटो पर रहने वाले पक्षी थलीय ही होते है जो अपना भोजन (मछली तथा अन्य समुद्री जन्तु) सागर से प्राप्त करत हैं। इनके विपरीत खुले सागरो मे रहने वाले पक्षी केवल आराम करने के लिए ही थल पर आते है। बाकी समय वे सागरो पर उडते या ग्लाइड करते रहते हैं। थल से इनका तात्पर्य छोटे-छोटे निर्जन टापुओ से होता है। ऐसे पक्षी खुले सागर पर लम्बी-लम्बी उडाने भरते रहते है। इन उडानो मे इन्हे थकान नही होती। पर इन पर मौसम के प्रभाव अवश्य पडते है और ये भी मौसम के प्रतिकूल प्रभावो से बचने और प्रजनन के लिए लम्बी-लम्बी प्रवास-यात्रायें करते है।

समुद्री पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे अध्ययन करना थलीय पक्षियो की तुलना मे बहुत कठिन होता है। उन्हे पकडना और छल्ले पहनाना तथा बाद मे उनकी गतिविधियो पर नजर रखना बहुत दुष्कर कार्य है। वैसे अनेक समुद्री पक्षी यथा किटीवेक, प्लोवर, टर्न, जाइगर, स्कुआ शीअरवाटर, पेट्रल अल्बाट्रास आदि जातियो के पक्षी बहुत लम्बी-लम्बी—थलीय पक्षियो की तुलना मे कही अधिक लम्बी—प्रवास-यात्राये करते हैं। विचित्र बात यह है कि अनेक किस्मो के समुद्री पक्षी, जिनके बाकायदा पख होते है और वे उड सकते है, तैर कर ही यात्राये करते है। ये यात्राये बहुत लम्बी नही होती। ऐसे कुछ पक्षी हैं मुरे **(उरिआ)** ब्रॉट गीज़ **(ब्रान्टा)**, ईडर डक **(सोमाटेरिआ)** आदि। पर सबसे विचित्र प्रवास यात्रा होती है आर्कटिक टर्न की। उसकी प्रवास-यात्रा न केवल समुद्री पक्षियो मे वरन् सब पक्षियो और सब जन्तुओ मे सबसे लम्बी होती है। इस यात्रा मे, जो पृथ्वी के लगभग सबसे उत्तरी भाग से लेकर लगभग सबसे दक्षिणी भाग तक और वापस होती है, आर्कटिक टर्न वर्ष मे लगभग आठ महीने तक उडता रहता है। पृथ्वी के सब जीव-जतुओ मे वह ही सबसे अधिक सूर्य का प्रकाश देखता है। आइये ! उसकी विलक्षण प्रवास-यात्रा की कुछ

विस्तार से चर्चा कर ले।

आर्कटिक टर्न—यह पक्षी (**स्टेरना पैराडिसिआ** अथवा **स्टेरना मैकरुरा**) यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका के सबसे उत्तरी तटो के पास अपने घोसले बनाता है। इन भागो मे कदाचित ही कोई अन्य पक्षी घोसला बनाता हो। पर यह सर्दिया अन्ध और प्रशात महासागर के एकदम दक्षिण मे—आम तौर से अटार्कटिक वृत के दक्षिण मे—बिताता है। इस प्रकार यह गर्मी (उत्तरी गोलाध की गर्मी) एस्किमो के देश मे गुजारता है और सर्दी (उत्तरी गोलार्ध की सर्दी) पेन्गुइन के देश मे। इसके लिए एक ओर से ही लगभग 18,000 किलोमीटर की दूरी तय करनी पडती है। निश्चय ही वापस आने के लिए भी इतनी ही उडान भरता है। इस प्रकार यह वर्ष भर मे 36,000 किलोमीटर की उडान भर लेता है।

प्रसिद्ध पक्षीवैज्ञानिक ओ एल ऑस्टिन, के अनुसार आर्कटिक टर्न निश्चित दिशा मे ही उडान भरता है। जुलाई मास के अन्त मे उत्तर अमेरिका, यूरोप और एशिया के उत्तरी भागो मे निवास करने वाले आर्कटिक टर्न यूरोप के पश्चिमी तट पर आने लगते है। उत्तर अमेरिका मे रहने वाले टर्नो का यूरोप की ओर उडान भरने का कारण होता है पश्चिमी अध महासागर की गर्म जलधाराओ से बचना। यहा से ये तट के सहारे-सहारे दक्षिण की ओर चल पडते है। अफ्रीका के तट पर पहुचने के बाद ये दो भागो मे बट जाते हैं। कुछ अफ्रीका के तट के सहारे-सहारे ही दक्षिण की ओर उडान भरते हुए अटार्कटिक वृत के दक्षिण मे जा पहुचते है। वहा से वे पूर्व की ओर उडान भरते हैं और आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैड के दक्षिणी तटो पर जाकर चैन लेते है।

बाकी टर्न अफ्रीका के तट से फिर पश्चिम की ओर उडान भर कर दक्षिण अमेरिका के पूर्वी तट पर जा पहुचते हैं। वहा से वे दक्षिण की ओर उडान भर कर अटाकटिक वृत को पार करते हुए अटार्कटिक महाद्वीप मे जा पहुचते है।

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैड के दक्षिणी तटो से भी आर्कटिक टर्न अटार्कटिक महाद्वीप पहुच जाते हैं।

इनको इस यात्रा मे लगभग तीन महीने—अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर लग जाते हैं। यूरोपीय अक्षाशो मे सबसे अधिक आकटिक टर्न सितम्बर मास मे यात्रा करते है।

उत्तर अमेरिका के प्रशात महासागरीय तट के निकट रहने वाले टर्न उत्तर और दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तटो के सहारे भी उडान भरते है। इनमे से कुछ चिलो और अर्जेन्टीना के पश्चिमी तटो पर ही सर्दी बिता देते है। वे खुले सागर मे भी रह लेते हैं। पर कुछ अटार्कटिक महाद्वीप तक जाते हैं।

अटार्कटिक महाद्वीप पर गर्मी की ऋतु समाप्त हो जाने पर आर्कटिक टर्न वापस उडान शुरू कर देते हैं। ये अप्रैल के महीने मे यूरोप जा पहुचते हैं। यहा से कुछ उत्तर अमेरिका की ओर उड जाते है जबकि बाकी यूरोप और एशिया के सुदूर उत्तरी भागो मे फैल जाते हैं। वापस आते समय भी वे लगभग उन्ही पथो को चुनते हैं जिनसे वे अटार्कटिक गये थे।

यद्यपि आर्कटिक टर्न 36,000 किलोमीटर से भी लम्बी उडान भरते है पर उनके उडने का तरीका इतनी लम्बी और कठिन उडानो के "अनुरूप" नही होता। अक्सर वे अकेले ही अथवा 20-25 के समूह मे उडान भरते है। वे एकदम सीधी दिशा मे उडान नही भरते। उन्हे उडते देखकर ऐसा लगता है मानो वे अपने बडे पखो और हल्के वजन के साथ हवा मे पख फडफडा रहे हो।

पेन्गुइन—पेन्गुइन एक ऐसा पक्षी है जो उड नही सकता यद्यपि वह बहुत अच्छा तैराक होता है। वह डैनो का उपयोग उडने के लिए नही तैरने के लिए करता है। वह सुदूर अटार्कटिक महाद्वीप के तटीय सागरो मे रहता है पर थल पर भी आसानी से कई किलोमीटर तक चला जाता है। जब यह खडा होता है तब दूर से ऐसा लगता है मानो छोटे कद का कोई आदमी सूट पहने खडा हो। वह झुड मे रहना पसन्द करता है।

यद्यपि पेन्गुइन आम तौर से अटार्कटिक महाद्वीप और उसके आस पास के सागरो मे रहते है पर अनेक बार वे जलधाराओ मे तैर कर हजारो किलोमीटर दूर तक चले जाते हैं। वे हम्बोल्ट (ठडी) जलधारा जो अटार्कटिक महासागर से आरम्भ होती है, के साथ पेरु और गालपेगोस द्वीपो तक आ जाते है। फिर तैर कर वापस अटार्कटिक महासागर को लौट जाते है। इसी प्रकार बेगुला जलधारा के साथ वे अफ्रीका के पश्चिमी तट पर आ पहुचते है। आस्ट्रेलिया, तास्मानिया और न्यूजीलैंड के तटो तक तो वे जाते ही रहते है।

सील की भाति पेन्गुइन भी अपना अधिकाश जीवन सागर पर ही बिताता है। वहा उसके लिए हर सुविधा उपलब्ध होती है पर अडे देने के लिए उसे थल पर आना पडता है। वह अडे देने के लिए एक विशेष जगह पर ही आता है। दरअसल सैकडो पेन्गुइन एक ही स्थान पर अडे देते हैं। इसके लिए आम तौर पर उन्हें 10 से 90 किलोमीटर तक की पैदल यात्रा करनी पड जाती है। जिस वर्ष बर्फ जल्दी पिघल जाती है पेन्गुइन अपनी यात्रा का कुछ भाग तैर कर ही पार कर लेते हैं।



ऐडलाई जाति के पेन्गुइन अक्तूबर के आरम्भ तक सागरो मे तैरते रहते हैं (उस समय अटार्कटिक मे ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ होता है)। फिर वे अडे जनने के लिए किनारे पर आने लगते हैं। उनके झुडो मे नर और मादा दोनो होते हैं। तट पर पहुचते ही वे प्रजनन स्थल की ओर चल पडते हैं। यहा वे जोडा बनाते हैं और बाद मे मादा दो अडे देती है। अपनी इस यात्रा के और जोडा बनाने तथा अडा देने के दौरान वे कुछ भी नही खाते क्योकि उन्हे खाने को कुछ मिलता ही नही। दूसरा अडा देने के बाद मादा सागर की ओर चल पडती है। पर नर अडो पर बैठ जाता है। सागर मे पहुच कर मादा चौदह पन्द्रह दिनो तक मछलिया और क्रिल खाती रहती है। फिर वह अपने अडो की ओर

चल पडती है। वहा जाकर वह नर को छुट्टी दे देती है और स्वय अडो पर बैठ जाती है। अब नर सागर जाकर छुट्टी मनाता है और खाता-पीता रहता है। चौदह दिन बाद वह वापस आकर मादा को छुट्टी देता है। इस प्रकार की यात्राये लगभग दिसम्बर के मध्य तक चलती रहती है।

उम समय तक अटार्कटिक महाद्वीप पर काफी गर्मी हो जाती है और काफी मात्रा मे बर्फ पिघल चुकी होती है जिससे सागर काफी पास "सरक" आता है और पेन्गुइनो को कम दूर चलना पडता है। पर सागर को जाने वाले और वहा से लौटने वाले पेन्गुइन प्रजनन स्थल का चक्कर काट कर ही अपने अडो तक जाते है। वे अन्य पेन्गुइनो से, जो अडो पर बैठे हुए होते है, "छेडछाड" नही करते।

इस बीच अडो मे से बच्चे निकल आते है। जैसे ही ये बच्चे तैरने लायक़ होते है ऐडलाई पेन्गुइन सागर को ओर चल पडते है और अगले प्रजनन मौसम तक वही जीवनयापन करते है। इस बीच वे "सैर" के लिए अन्य प्रदेशो की यात्रा भो कर लेते है।

एम्परर पेन्गुइन (**एप्टेनाडाइटेस फोरस्टेरी**) सर्दियो मे (मई-जून मे) अडे देते है। इसके लिए मादा थल पर नही आती वरन् सागर पर जमी बर्फ पर ही, एक अडा देती है। अडा देकर वह तो खुले (बिना जमे) सागर को ओर चल पडती है पर नर बेचारा अपने पैरो पर खडा होकर अडे को अपने से इस प्रकार सटा लेता है कि उसे ठड न लगे।

कभी-कभी खुले सागर तक पहुचने के लिए मादा को 150 किलोमीटर से भी अधिक चलना पडता है। लगभग दो महीने तक सागर मे घूमने और मछलिया, क्रिल आदि खाने के बाद मादा अडे के पास वापिस लौट आती है। तब तक बेचारा नर भूखा प्यासा, खडा-खडा अडे की रक्षा करता रहता है। इससे वह बहुत दुबला हो जाता है। मादा के आने पर वह सागर की ओर चल पडता है और तीन-चार सप्ताह तक सागर मे खूब भोजन करने और मौजमस्ती करने के बाद अपनी मादा के पास आ जाता है।

जब अडे मे से बच्चा निकल आता है और वह चलने लायक हो जाता है तो पूरा "परिवार" सागर की ओर चल पडता है।

सर्दी की ऋतु मे अटार्कटिक मे रात रहती है और अधेरा छाया

रहता है। इस अधेरे मे पेन्गुइन कैसे अपना रास्ता ढूढते हैं, यह अब भी एक रहस्य है।

भारत मे प्रवासी पक्षी

भारतीय उपमहाद्वीप मे लगभग 2100 जातियो के पक्षी पाए जाते है। इनमे थलीय तथा समुद्री, दोनो किस्म के, पक्षी शामिल है। इनमे से लगभग 350 प्रजातियो के पक्षी प्रवास-यात्रा करते है। ये हमारे देश से बाहर मध्य और उत्तरी एशिया तथा पूर्वी और उत्तरी यूरोप मे प्रजनन करते है। पर सर्दी बिताने हमारे देश मे आ जाते है। शीत ऋतु मे नियमित रूप से आने वाले इन प्रवासी पक्षियो मे **एनाराइडी** कुल की बतखे और राजहस, **चेराड्राइडी** कुल के जलपक्षी, **हिरुन्डि-निडी** कुल के अबालील, **सिलवानो** कुल की फुदकी, **मोटासिलीडी** की धोबन, **फ्रिंगीलीडी** कुल के कुलिग और **एम्बेरीजीडी** कुल के गदम पक्षी शामिल हे। इसके अतिरिक्त भी अनेक कुलो और वशो के पक्षी प्रवास-यात्रा पर हमारे देश मे आते है। वैसे हमारे देश मे सब प्रकार की प्रवास-यात्राए करने वाले—हिमालय पार से हजारो किलोमीटर की यात्रा करने वाले पक्षियो से लेकर पर्वतो पर केवल कुछ सौ मीटर तक की ही यात्रा करने वाले पक्षी—आते है। अनेक जातियो के पक्षी देश के भीतर ही नियमित रूप से प्रवास-यात्रा करते है।

दूर देशो से आने वाले इन प्रवासी पक्षियो के अतिरिक्त अनेक जातियो के पक्षी हमारे देश की सीमा के एकदम निकट—अफ-गानिस्तान-पाकिस्तान सीमा, के निकट—अडे देते है। साथ ही अनेक जातियो के पक्षी गिलगिट, लद्दाख, गढवाल, नेपाल, सिक्किम, भूटान और उत्तर-पूर्वी सीमात प्रदेशो मे प्रजनन करते हैं। इनमे से बहुत-सी जातियो के पक्षा ठड की ऋतु मे भारत मे आकर बसेरा करते है। कई जातियो के पक्षी दक्षिण भारत मे भी चले जाते है। ये सभी पक्षी सुदूर देशो से आने वाले प्रवासी पक्षियो की भाति ही व्यवहार करते है। वे शरद ऋतु मे, मुख्य रूप से सितम्बर से नवम्बर मास तक, नियमित रूप से आते है और फिर ग्रीष्म ऋतु आरम्भ होने से पहले, मार्च-अप्रैल मे, वापस उड जाते है। ये पक्षी प्रतिवर्ष लाखो की सख्या मे आते हैं। ये विभिन्न मार्गो से आते है और विविध तरीको से हमारे देश मे बसेरा करते है। विचित्र बात यह है कि हमारे देश मे अनेक जातियो के प्रवासी पक्षी

एकदम पूर्व निश्चित समय पर आते हैं और यहा वे एक स्थान विशेष पर ही ठहरते है। इस बारे मे जगतप्रसिद्ध, भारतीय पक्षीवैज्ञानिक डा सलीम अली के पर्यवेक्षणो का उल्लेख करना युक्तिसगत होगा। उन्होने एक धोबन पक्षी (ग्रे वेगटेल-**मोटासिला सिनेरिआ**) को लगातार चार वर्षों—1942 से 1946 तक—हर वर्ष बम्बई के अपने घर के बगीचे मे सर्दी बिताते देखा था।

यद्यपि हमे इन प्रवासी पक्षियो के बारे मे काफी जानकारी प्राप्त हो चुकी है पर अब भी अनेक बातें हमारे लिए रहस्य बनी हुई है।

हमारे देश मे आने वाले प्रवासी पक्षियो के बारे मे जानकारी एकत्रित करने की शुरूआत उन ब्रिटिश सैनिक और गैर-सैनिक अधिकारियो ने की थी, जो अग्रेजी शासन के आरम्भ मे भारत-अफगान सीमा पर नियुक्त थे। इन अधिकारियो मे से कुछ अभूतपूर्व प्रकृतिवैज्ञानिक थे और इन्होने भारतीय पक्षियो के बारे मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य खोज निकाले थे। इन वैज्ञानिको मे स्कुलो, विड्डुल्प, मार्शल बधु, मेग्रेय, व्हाइट हैड और डोनाल्ड उल्लेखनीय है। यद्यपि ये अधिकारी मुख्य रूप से बतख, हस और सारस जैसे आखेट-पक्षियो मे ही रुचि लेते थे परन्तु हिमालय के परे से आने वाले पक्षियो के बारे मे इनकी पर्यवेक्षणात्मक जानकारिया भारतीय पक्षीविज्ञान की मुख्य आधार बन चुकी हैं। ऋतुओ के अनुसार पक्षियो के आवागमन का बारीकी से अध्ययन करके इन महानुभावो ने यह सुझाव पेश किया था कि साइबरिया और मध्य एशिया से पक्षी मुख्य रूप से सिन्धु नदी की घाटी मे से ही होकर भारत आते है। उत्तर-पूर्वी भारत मे यद्यपि बहुत कम सख्या मे प्रवासी पक्षी आते है पर उनका यात्रा-पथ मुख्य रूप से ब्रह्मपुत्र घाटी मे से होता है। इस प्रकार प्रवासी पक्षी हिमालय के दोनो सिरो से भारत मे प्रवेश करते है। बाद मे दोनो पथ एक दूसरे के निकट आते जाते है और भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर लगभग आपस मे मिल जाते हैं। निश्चय ही ये श्रीलका मे जाकर समाप्त हो जाते हैं।

आम तौर पर यह समझा जाता है कि प्रवास-यात्रा के दौरान पक्षी बहुत ऊचाई पर नही उडते। वे प्राय 400 मीटर की ऊचाई पर उडते हैं। कभी-कभी ही 900 मीटर तक की ऊचाई पर उडते हैं। ऊचे पर्वतो को पार करते समय ही वे ऊचाई पर उडते हैं। अवलोकनो मे यह पाया

गया है कि कुछ पक्षी, विशेष रूप से सागरो पर से लबी उडान भरने वाले पक्षी कम ऊचाई पर ही उडते है पर कुछ जातियो के पक्षी 7500 मीटर जैसी ऊचाई पर ही उडान भरना पसन्द करते हैं चाहे नीचे उडने मे कोई वस्तु (ऊची इमारते, पेड, पर्वत आदि) उनके लिए बाधा उपस्थित न करते हो। ठडे देशो से आने वाली अनेक जातियो की बतखे, हस, गिद्ध, जलपक्षी, गौरय्या जाति के पक्षी 3,000 से 5,200 मीटर और अनेक बार 6000 मीटर से भी अधिक ऊचाई पर हिमालय को पार करते है। आवश्यकता पडने पर वे इससे भी अधिक ऊचाई पर विरल वायु मे भी बिना किसी कठिनाई के उड सकते हैं। अनेक एवरेस्ट अभियानो के दौरान 7000 मीटर की ऊचाई पर स्थित शिवरो के आसपास कौवे और पहाडी कुलिग पक्षी और 6000 से 7000 मीटर की ऊचाई पर ग्रिफन गिद्ध और लैमर्गियर पक्षी देखे गए है। डोमकौवो ने तो बिना किसी अडचन के, पर्वतारोहियो का 8200 मीटर की ऊचाई तक पीछा किया है। इतनी ऊचाई पर वायु दाब लगभग एक तिहाई ही रह जाता है। प्रथम सफल एवरेस्ट अभियान (1953) के दौरान तो एक डोमकौवे ने पर्वतारोहियो का 8500 मीटर की ऊचाई तक पीछा किया था। वह उन पक्षियो मे से एक था, जो 7900 मीटर की ऊचाई पर स्थित पर्वतारोहियो के शिविरो के आसपास जूठन खाया करते थे।

विचित्र बात यह है कि साइबेरिया और यूरोप देशो से प्रवास-यात्रा पर आने वाले हस, बतख, सारस, गिद्ध आदि दिन के समय ही नही रात मे भी हिमालय की ऊची-ऊची चोटियो पर से उडानें भरते हैं। कुछ वर्ष पूर्व एक चादनी रात मे, देहरादून के पास हसो को 8830 मीटर पर उडते पाया गया था।

यद्यपि भारत मे प्रवास-यात्रा पर आने वाले पक्षियो की बडी सख्या हिमालय की ऊची चोटियो पर से उडाने भरती है तथापि अब भी अधिकाश पक्षी शरद ऋतु के आरम्भ मे सिन्धु नदी की घाटी पर से उडकर ही भारत आते हैं। सिन्धु नदी की घाटी पर से आने वाले पक्षी जल्दी हो तीन समूहो मे विभक्त हो जाते हैं। एक समूह पाकिस्तान की कागन और खुर्रम घाटियो की ओर—पश्चिम की ओर चला जाता है, दूसरा कश्मीर और पजाब की ओर मुड जाता है और तीसरा दक्षिण की ओर ही बढता चला जाता है। दक्षिण की ओर निरन्तर यात्रा करते रहने वाला समूह, राजस्थान के थार मरुस्थल से बचता हुआ,

कच्छ के रन, और सौराष्ट्र मे जा पहुचता है। यहा से ही पक्षी भारतीय प्रायद्वीप के विभिन्न भागो मे फैलते है। इन्ही मे वे पक्षी आ मिलते है जो पश्चिम एशिया से, कास्पियन-अरल सागरो के क्षेत्र से ईरान, अफगानिस्तान और सिध होते हुए आते है।

मोटे तौर पर यही है भारत मे आने वाले प्रवासी पक्षियो के मार्गों का विवरण। पर यह विवरण पूर्ण नही है। इसमे ऐसे अनेक स्थल हैं जिनके बारे मे अभी भी पूरी जानकारी नही है और जिनके बारे मे अब तक अनुमान ही लगाए गए है।

इस बात को कुछ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वसन्त मे प्रवास यात्रा करने वाले अनेक जातियो के पक्षियो का तरीका बहुत भिन्न होता है। उस समय आम तौर से वे जल्दी मे होते है, इसलिए सीधी उडाने भरते है और मार्ग मे कम स्थानो पर रुकते है। पर इस बार भी वे ऊची चोटियो पर से उडान भरते है।

शरद ऋतु मे मध्य और उत्तरी एशिया से दक्षिण-पश्चिम की ओर, अफ्रीका महाद्वीप को जाने वाले, प्रवासी पक्षी अफगानिस्तान, भूतपूर्व सीमा प्रात (पाकिस्तान), बलोचिस्तान और सिध पर से गुजरते हुए अरब सागर के ऊपर से उडते हुए अरब प्रायद्वीप के दक्षिणी सिरे पर से होते हुए सोमालिया, इथिओपिआ की ओर जाते है। वहा से वे अफ्रीका महाद्वीप के दक्षिणी भाग की ओर उड जाते है। ये पक्षी हमारे देश के किसी भी भाग के ऊपर से नही गुजरते। इस पथ पर उडने वाले पक्षियो मे नीलकठ (**कोरासिअस गैरूलस सेमेनोवी**) चपक (**कैप्रीमुलगस यूरोपियस अनविनो**) पत्रिका (**मेरोप्स एपीअस्टर** और **मेरोप्स पेरसीकस**), पचाक (**लैनियस कोलुरिओ**) रॉक थ्रश (**मोन्टीकोला सैक्साटिलिस**), ग्रे बैक्ड चाट (**एरीथ्रोपाइगिआ गैलक्टोटस फैमिलीएरिस**), इडियन व्हाइट थ्रोट (**सिलविआ कोम्मुनिस आस्टेरोप्स**), स्पाटेड फलाई कैचर (**म्यूसिकापा स्ट्रीएटा न्यूमान्नी**) शामिल है। ये नियमित रूप से इस पथ से उडते हैं। इनमे से अधिकाश वापिस लौटते समय निश्चय ही भिन्न पथ चुनते हैं।

हमारे देश मे उत्तर-पूर्वी दिशा मे आने वाले पक्षियो के बारे मे हमे इससे भी कम जानकारी उपलब्ध है। इसका एक प्रमुख कारण है पूर्वी हिमालयी क्षेत्र का अत्यन्त दुर्गम और निर्जन होना। साथ ही 1962 के चीनी आक्रमण के पहले तक वह क्षेत्र देश की रक्षा की दृष्टि से महत्व-

पूर्ण नही माना जाता था । इसलिए उसके बारे मे पर्याप्त सर्वेक्षण भी नही किए गए थे ।

हमारे देश के दक्षिण मे स्थित श्रीलका मे न केवल हिमालय के पश्चिमी और पूर्वी दोनो सिरो से आनेवाले पक्षी समूह पहुचते हैं वरन् इडोचाइना, थाईलैंड आदि पूर्वी देशो से आने वाले पक्षी भी, अडमान होते हुए, वहा पहुच जाते हैं ।

आधुनिक तकनीको का श्रीगणेश

भारत मे आधुनिक तकनीको से प्रवासी पक्षियो का अध्ययन करने का श्रीगणेश किया बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी ने 1926 मे । उस वर्ष धार के तत्कालीन महाराजा, उदजीराव पॉर और कुछ अन्य रिसायतो के शासको तथा सिध के कुछ जमीदारो के सहयोग से प्रवासी पक्षियो को छल्ले पहनाने के कायक्रम की शुरुआत हुई । उस वप कुछ पक्षियो को छल्ले पहनाये गये । जैसा कि आपको विदित है छल्ले पह-नाए हुए पक्षियो की टोह रखना, उन्हे किन्ही दूर देशो मे खाज निका-लना, और छल्ले पर खुदी जानकारी के आधार पर यह तय करना कि वह पक्षी किस देश से आया है, काफी श्रमसाध्य कार्य है जिसमे बहुत समय ही नही धन भी लगता है । धन की कमी के कारण ही बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी को छल्ले पहनाने के कार्यक्रम को त्याग देना पडा । इस प्रकार यह कार्यक्रम केवल 8 वर्ष ही चला पर इस लघु अवधि मे ही उसे आशातीत सफलता मिल चुकी थी ।

इस लघु अवधि मे इस बात की पुष्टि हो गई कि हमारे देश मे आने वाली प्रवासी बतखे, साइबेरिया तथा मध्य और उत्तर पूर्वी एशिया से, 3000 से 5000 किलोमीटर की दूरी तय करके आती है । उसी दौरान कुछ ऐसे पक्षी जिन्हे भारत मे छल्ले पहनाए गए थे, रूस मे मिले । साथ हो यूरोप मे छल्ले पहनाए गए पक्षी भारत मे पाए गए । एक ग्रीन सैडपाइपर (**ट्रिगा ओक्रोपस**), जिसे मास्को के निकट छल्ला पहनाया गया था, केरल मे पाया गया, जमन मे छल्ले पहनाया गया लगलग (**सिसोनिआ सिसोनिआ**) राजस्थान मे मिला तथा हगेरी मे छल्ला पहनाया गया टिलयार (**स्टुरनस रोसेअस**) पजाब मे ।

आजादी के चौदह वर्ष बाद, वष 1960 मे, प्रवासी पक्षियो के अध्ययन की योजना पुन आरम्भ की गई । उस समय तक देश की अनेक

वैज्ञानिक सस्थाए इस कार्य मे रुचि लेने लगी थी। इस बार भी बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी ने ही प्रमुख रूप से भाग लिया पर अन्य सस्थाओ और पक्षी वैज्ञानिको ने भी भरपूर सहयोग दिया। वैसे इस समय तक पक्षियो के प्रवसन मे रुचि लेने का एक अन्य कारण भी सामने आ चुका था। वह था प्रवासी पक्षियो द्वारा कीडो (एन्थ्रोपोड) पर रहने वाले वायरसो को दूर देशो मे फैलाना। इस योजना के अन्तर्गत कुछ ही वर्षों मे लाखो पक्षियो को छल्ले पहना दिए गए। इनके **एनाटिडी** कुल की बतखो और **चेराड्रिआडी** कुल के जल पक्षियो के अतिरिक्त मुख्य रूप से वैगरेल तथा गौरिय्या जाति के पक्षी थे।

शीतकाल मे आने वाले कुछ प्रवासी पक्षियो के बारे मे डा० सलीम अली ने एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य का वर्णन किया है। ये पक्षी अपने शीतकालीन आवास के अनुसार अपनी स्थिति बदलते रहते है। सर्दियो के आरम्भ मे उत्तरी और उत्तर-पश्चिमी देशो से आने वाले प्रवासी पक्षी दक्षिण की ओर जाते समय भोपाल से गुजरते है। इनमे से कुछ वही ठहर जाते हैं और जाडा वही बिता देते हैं। इस प्रदेश के लिए इन पक्षियो को ही "शीतकालीन यात्री" कहा जा सकता है। इनके विपरीत कुछ पक्षी दक्षिण की ओर जाते समय कुछ समय के लिए ही भोपाल के आसपास के क्षेत्र मे ठहरते है। पर शीघ्र ही इस प्रदेश मे उनका ठहरना बद हो जाता है। फिर गर्मी के आरम्भ मे ही ये उत्तर की ओर जाते दिखाई देते है। ये "मार्ग प्रवासी" पक्षी है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे पक्षी भी हमारे देश मे आते है जो शीत ऋतु के आरम्भ मे तो दक्षिण की ओर जाते दिखायी देते है पर लौटते हुए कभी नही देखे गए। निश्चय ही वे वापस लौटने के लिए अलग मार्ग अपनाते हैं। इस तरह कुछ पक्षी भोपाल मे तो "शीतकालीन मार्ग प्रवासी" होते है पर देश के अन्य भागो मे "वसत कालीन मार्ग-प्रवासी बन जाते है। इसी प्रकार कुछ पक्षी उत्तर की ओर लौटते समय ही भोपाल पर से उडान भरते है।

ऐसा भारत के अन्य क्षेत्रो मे भी होता है।

कुछ प्रमुख प्रवासी पक्षी जैसा आप पढ चुके है कि भारत मे शीत ऋतु मे दूर देशो से सैकडो जातियो के पक्षी आते है। इनमे से कुछ प्रमुख पक्षियो का सक्षिप्त विवरण **तालिका-1** मे दिया जा रहा है।

स्थानीय प्रवासी पक्षी—भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से काफी बडा

देश है। यहा विभिन्न किस्मो की जलवायु वाले क्षेत्र हैं। एकदम उत्तरी क्षेत्र मे अत्यधिक ठड पडती है जबकि दक्षिणी इलाके वर्ष भर गर्म रहते है। असम और मेघालय मे बहुत अधिक वर्षा होती है पर राज स्थान मे अत्यधिक कम। इन कारणो से देश के अन्दर भी विभिन्न जातियो के पक्षी नियमित रूप से प्रवास-यात्राये करते हैं। इन यात्राओ मे वे उतने ही नियमित होते है जितने दूर देशो से आने वाले पक्षी। पर ये भारत से बाहर नही जाते।

पक्षियो की गतिविधियो मे रुचि रखने वाले व्यक्ति सहज ही यह बता सकते हैं कि पैराडाइज फ्लाइकैचर, गोल्डन ऑरियल, पिट्टा जैसे पक्षी कभी तो किसी स्थान पर बडी सख्या मे दिखाई देते है और कभी एकदम गायब हो जाते है। इसका मुख्य कारण है इनका प्रवमन। यह पाया गया है कि दक्षिण भारत की अपेक्षा पक्षी उत्तर भारत मे, विशेष रूप से हिमालय की तराई वाले इलाको मे, अपेक्षाकृत अधिक स्थानीय प्रवास-यात्राये करते है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि दक्षिण भारत मे, भूमध्यरेखा के निकटवर्ती क्षेत्रो मे, मौसम परिवर्तन कम होते है जबकि हिमालय की तराई वाले भाग गर्मी मे काफी गर्म हो जाते है और शीत ऋतु मे काफी ठडे।

स्थानीय प्रवसन के भी वे ही कारण—मौसम परिवर्तन, भोजन की कमी, प्रजनन के लिए उपयुक्त वातावरण और स्थल आदि की तलाश होते है, जो अत महाद्वीपीय प्रवास यात्राओ के। **तालिका-2** मे कुछ प्रमुख स्थानीय प्रवासी पक्षियो के विवरण दिए जा रहे है।

तुगंता प्रवास—हिमालयी क्षेत्र मे ऐसी अनेक जातियो के पक्षी भी निवास करते है जो शरद ऋतु के अन्त मे, बर्फ पडना आरम्भ होते ही निचले, कम ऊचाई वाले क्षेत्र मे आ जाते है पर वसत ऋतु मे बर्फ पिघलना शुरू हो जाने पर फिर ऊपर की ओर चले जाते है। ये पक्षी अक्सर वसत मे ही प्रजनन करते हैं।

यद्यपि ये पक्षी ठड मे केवल कुछ सौ मीटर ही नीचे आते हैं और गर्मी के आरम्भ मे उतने ही ऊपर जाते हैं पर ये कार्य वे नियमित रूप से करते है। इसलिए इनकी यात्रा भी प्रवास-यात्रा है यद्यपि अधिकाश पक्षियो की यात्राओ की तुलना मे कही छोटी।

तालिका-1

दूर देशो से भारत मे आने वाले प्रवासी पक्षी

1 **पक्षी**—अनजन (यूरोपियन ग्रे हेरान—**एड्रिआ सिनेरिआ सिनेरिआ**)

आगमन समय—शीत ऋतु का आरम्भ

प्रस्थान समय—ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ

विवरण—उत्तर के ठडे प्रदेशो से लेकर अफ्रीका के इथियोपियन क्षेत्र तक, यूरोप, उत्तर अफ्रीका, तुर्की आदि मे अडे देता है। भारत मे बलोचिस्तान, सिन्ध, नेपाल आदि से आता है। कुछ लोगो का मत है कि इसका निवास क्षेत्र अनुमान से कही अधिक विस्तृत है और यह लम्बी-लम्बी प्रवास यात्रा करता है। कजाखिस्तान (रूस) मे छल्ले पहनाए गए अन्जन दक्षिण कनारा जिले (कर्नाटक राज्य) मे पाए गए।

2 **पक्षी**—लगलग (व्हाइट स्टार्क—**सिकोनिआ सिकोनिआ**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—पाकिस्तान, उत्तर पश्चिमी भारत और नेपाल की



तराई मे बहुतायत से पाया जाता है। देश के अन्य भागो मे यदा-कदा मिलता है। यूरोप मे 60^0 उत्तर अक्षाश तक उत्तरी अफ्रीका और पश्चिमी एशिया मे अडे देता है।

प्रवास-यात्रा पर उत्तर पश्चिमी दिशा से, पाकिस्तान पर से उडता हुआ, कच्छ, केरल और राजस्थान मे आता है। खुर्रम घाटी (पाकिस्तान) मे, अप्रैल से मई तक विशाल झुड देखे गए है। जर्मनी के ब्रानस्कविग शहर मे छल्ले पहनाये गए पक्षी, बीकानेर (राजस्थान) मे मिले है।

मध्य पूर्व के देशो मे यह अनेक बार पुरानी मस्जिदो मे घोसला बनाता पाया गया है। मुस्लिम देशो मे मान्यता है कि यह हर वर्ष मक्का की यात्रा करता है। इसीलिए ईरान मे इसे "हाजी लगलग" भी कहा जाता है।

3 **पक्षी**—चमचबाज (स्पूनबिल—**प्लेटालिआ ल्यूकोरोडिया**)

आगमन समय—अक्तूबर-नवम्बर

प्रस्थान समय—माच-अप्रैल

विवरण—मध्य एशिया मे चीन से लेकर उसरी लैंड तक, जापान, सीरिया, मिस्र तथा भारत मे पाया जाता है।



अक्तूबर माह मे बडे झुडो मे उत्तर प्रदेश मे आ जाता है। दिसम्बर

मे सतलज और चिनाब नदियो के तटो पर आगमन। जून-जुलाई माह मे जिन पक्षियो को कास्पियन सागर के निकट छल्ले पहनाए गए वे अक्तूबर से जनवरी मास तक कोल्हापुर (महाराष्ट्र), मुगेर (बिहार), टोक (राजस्थान) व मन्दसौर (मध्य प्रदेश) मे पाए गए। पहले ये पक्षी दिल्ली चिडियाघर के जलाशयो मे भी आते थे। अब ये सर्दियो मे आमतौर से यमुना (वज़ीराबाद पुल और ओखला) तथा सुलतानपुर झील (हरियाणा) मे देखे जा सकते है।

एजीव सागर (रूस) के निकट छल्ले पहनाए गए कुछ पक्षी हैदराबाद (पाकिस्तान) मे भी मिले।

4 **पक्षी**—बोग हस (फ्लेमिगो—**फोनिकोप्टेरस रोसेयस**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—दक्षिण फ्रास और स्पेन, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका,



मध्यपूर्व, कास्पियन सागर के निकट के क्षेत्र, अफगानिस्नान, पश्चिम पाकिस्तान आदि का निवासी। प्रजनन के लिए बडे झुड यूरोप, अफ्रीका और एशिया मे चक्कर काटते रहते है। ये हजारो की सख्या मे, हर वर्ष, नजफगढ झील, यमुना नदी, सुलतानपुर झील के निकट देखे जाते है। ईरान के अशफ द्वीप मे जिन बोग हसो को छल्ले पहनाए गए थे वे 3-4 महीनो बाद गुजरात, राजस्थान, दिल्ली, आध्र प्रदेश व उडीसा मे मिले।

5 **पक्षी**—हस, सोना (**ईस्टर्न ग्रे लैगगूज—एन्सर एन्सर**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च

विवरण—तुर्की और मध्य एशिया मे कमचतका तक, 40^0 पूर्व देशातर के पूर्व मे तथा 60^0 उत्तर अक्षाश के दक्षिण मे अडे देते है। आमतौर से, झुडो मे सोमा प्रात और कश्मीर मे अक्तूबर मे, कभी-कभी नवम्बर मे, आ जाते है। ये हिमालय की ऊची चोटियो को पार करके आते है। सुलतानपुर झील मे हर वर्ष आते है। किलादेव राष्ट्रीय उद्यान (पक्षी विहार), भरतपुर, मे छल्ले पहनाए गए पक्षी रूस व मगोलिया मे पाए गए।

6 **पक्षी**—राजहस (बार हेडेड गुज—**एन्सर इडिकस**)

आगमन समय—अक्तूबर-नवम्बर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रल

विवरण—मध्य एशिया मे तियन शान से कोकोनोर तक ऊचाई पर स्थित झीलो मे प्रजनन। पाकिस्तान तथा उत्तर भारत मे अक्तूबर-नवम्बर मे झुडो मे आगमन, मार्च मे उत्तर की ओर, कानली नदी (नेपाल) की ओर प्रस्थान। किरघिज (रूस) मे छल्ले पहनाए गए पक्षी गिलगिट और डेरा गाज़ी खा (पाकिस्तान) मे मिले। यमुना तट पर और सुलतानपुर झील मे सर्दियो मे आते हैं।

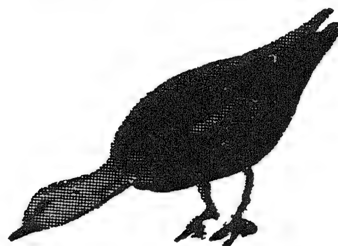
7 **पक्षी**—सुर्खाब (ब्रह्मणी डक—**टडोर्नो फेरुजिनिआ**)

आगमन समय—अक्तूबर-नवम्बर

प्रस्थान समय—अप्रैल मई

विवरण—दक्षिण-पूर्वी यूरोप से लेकर कास्पियन सागर तक तथा दक्षिण-पश्चिमी चीन मे प्रजनन। सर्दिया नील नदी की घाटी, भारत तथा दक्षिणी चीन म बिताते ह।

किरघिज (रूस) मे छल्ला पहनाए गए पक्षी लाहौर (पाकिस्तान) मे मिले। यमुना तट पर, दिल्ली चिडियाघर और सुलतानपुर मे सर्दी



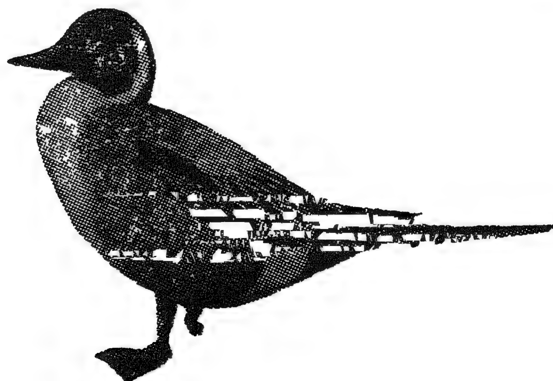
के शुरू मे आने लगते है। कई पक्षी तो गर्मी मे यही ठहर जाते हैं। कभी-कभी दिल्ली चिडियाघर मे अडे भी देते है।

8 **पक्षी**—सीकपर, डिगोच (पिनटेल डक—**ऐनस एक्यूटा**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च अप्रैल

विवरण—प्रजनन यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका के उत्तरी भागो मे। सर्दिया उत्तरी अफ्रीका, नील नदी की घाटी, इथियोपिया, ईरान की खाडी, भारत, श्रीलका और दक्षिणी चीन मे बिताते है। भारत मे पकडे गए छल्ला पहने, सीकपरो से यह पता चला है कि भारत मे आने वाले पक्षी आमतौर से कास्पियन सागर और साइबेरिया से,



लगभग 5000 किलोमीटर की सीधी उडान भर के आते हैं। दिल्ली के चिडियाघर मे भी हजारो की सख्या मे आते है। ठड मे यमुना तट, नजफगढ झील, सुलतानपुर मे भी देखे जा सकते है।

9 **पक्षी**—छोटी मुर्गाबी (कामन टील—**ऐनस क्रेका**)

आगमन समय—अगस्त

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—यूरोप और एशिया मे आइसलड से चीन, मचूरिया, जापान तक। सर्दी उत्तरी अफ्रीका, नील नदी की घाटी, ईरान,भारत, चीन और फिलीपीन मे बिताती है।

हर सर्दी मे भारत मे आने वाली पहली मुर्गावी, मध्य अगस्त तक भारत मे आ पहुचती है। वैसे नवम्बर तक आती रहती है। यहा आने के बाद कुछ समय के लिए उडने मे असमर्थ हो जाती है। कुछ मई के अन्त तक भारत मे ही रही आती है। वापस जाते समय लद्दाख पर से, 3000 मीटर की ऊचाई पर से उडान भरती है।

यमुना तट पर तथा सुलतानपुर झील मे इनकी सख्या काफी अधिक होती है पर दिल्ली चिडियाघर मे कम। किरघिज (रूस) मे छल्ला पहनाए गए पक्षी भारत के अनेक जलाशयो मे मिले है।

10 **पक्षी**—छोटा लाल सिर, पटारी (विगेन—**ऐनस पेनेलोप**)

आगमन समय—शीत ऋतु के आरम्भ मे

प्रस्थान समय—ग्रीष्म के आरम्भ मे

विवरण—प्रजनन शीत प्रदेशो मे, आर्कटिक प्रदेश से उत्तर मे—आइसलैड और स्काटलैड से कमचतका तक। सर्दिया ब्रिटेन मे और नील नदी की घाटी के दक्षिण मे, इथियोपिया, भारत, दक्षिणी चीन और जापान मे बिताता है।

सर्दियो के दिनो मे छोटा लाल सिर सिध (पाकिस्तान) और उत्तर भारत मे आम देखा जाता है। वैसे भारतीय प्रायद्वीप और देश के पूर्वी भागो मे भी मिलता है, पर कम तादाद मे। नेपाल मे 5000 मीटर से भी अधिक ऊचाई पर स्थित झीलो मे पाया गया है। धार (मध्य प्रदेश) मे जिन पक्षियो को छल्ले पहनाए गए थे उनमे से कुछ साइबेरिया मे मिले। उस समय नर पखविहीन थे और प्रजनन की तैयारी मे थे।

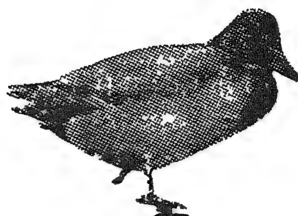
11 **पक्षी**—नीलसिर (मेलार्ड—**ऐनस प्लेटिरिन्कस**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च

विवरण—प्रजनन यरोप और एशिया मे—आर्कटिक वत से लेकर

भूमध्यसागर (30^0 उत्तर अक्षाश) तक। सर्दिया उत्तरी अफ्रीका, नील नदी की घाटी, भारत, ब्रह्मा, चीन और जापान मे बिताता है। कुछ पक्षी मेक्सिको, ग्रीनलैड, हवाई द्वीप आदि मे भी पाए गए है।



पहले सिंध (पाकिस्तान) मे इसके बडे-बडे झुड दिखायी देते थे। पर अब उनकी सख्या कम हो गई है। उत्तर-पश्चिमी भारत मे, शीत ऋतु मे काफी आबादी, पूर्व की ओर आबादी कम होती जाती है।

अन्य प्रवासी पक्षियो के साथ दिल्ली के चिडियाघर तथा सुलतान-पुर झील मे भी आ जाता है।

पाकिस्तान मे जिन पक्षियो को छल्ले पहनाए गए थे उनमे से कुछ नोवोसिबिर्स्क (रूस) मे मिले।

12 **पक्षी**—भेयखुर, भुआर (गैडवाल—**ऐनस स्ट्रेपेरा**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च

विवरण—भारत, पाकिस्तान और नेपाल मे सर्दिया बिताने वाली सबसे प्रचलित बतख। उत्तर भारत मे अपेक्षाकृत अधिक सख्या मे मिलती है—दक्षिण की ओर कम होती जाती है। यमुना तट तथा दिल्ली चिडियाघर मे भी आती है।

यूरोप और एशिया मे, प्रजनन आइसलैड से कमचतका तक, दक्षिण मे कास्पियन सागर, ट्रासबैकेलिया तक। पाकिस्तान मे मचर झील के पास छल्ले पहनाए गए पक्षी, 3000 किलोमीटर दूर, रूस मे मिले।

13 **पक्षी**—पटारी, चैता (गार्गनी—**ऐनस क्वेरक्वेडुला**)

आगमन समय—मध्य सितम्बर

प्रस्थान समय—मई मध्य

विवरण—शीत ऋतु मे सबसे पहले आने वाली और सबसे बाद मे वापस जाने वाली बतख। काफी वर्ष पहले खारदोग, लद्दाख (ऊचाई 4100 मीटर) मे जुलाई के अन्त मे पटारी के झुड देखे गए थे।

सितम्बर तक किलादेव राष्ट्रीय उद्यान, भरतपुर, मे काफी पक्षी आ जाते है। अत्यधिक ऊचाई पर उडान भरने वाली बतख दिन के समय शायद ही दिखायी देती है। घने बादलो के कारण ही दिन मे नीचे उतरती है।

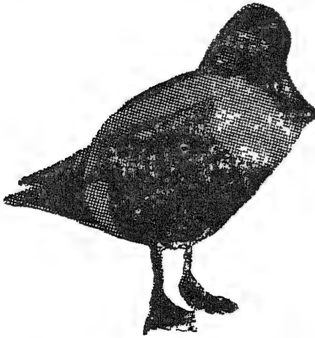
पूरे भारत, पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलका मे आने वाली वतख। भरतपुर मे छल्ले पहनायी गयी बतखे खीव (रूस) मे मिली। लेनिनग्राद मे छल्ले पहनायी गयी बतखे महाराष्ट्र मे मिली। 5000 से 6500 किलोमीटर नक की लम्बी प्रवास यात्राये करती है।

14 **पक्षी**—घिराह, पुनाना (शोवलर—**ऐनस क्लाइपीटा**)

आगमन समय—अक्तूबर

प्रस्थान समय—मई-जून

विवरण—सर्दियो मे बडी सख्या म आने वाली और काफी वाद मे वापस जाने वाली बतख। प्रजनन यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका मे। सर्दिया पूर्वी अफ्रीका, इरान को खाडी, श्रीलका, ब्रह्मा, दक्षिण चीन, भारत, जापान, हवाई द्वीप मे बिताती हे।



शीत ऋतु मे पूरे भारत, पाकिस्तान, श्रीलका मे फैल जाती है।

कजाक (रूस) मे छल्ला पहनायी गई बतख दिल्ली के निकट पायी गई।

भारत मे पहुचने के बाद बहुत-सी बतखे पूरी तरह पखविहीन हो जाती है, पर वापस लौटने से पहले उनके पख फिर आ जाते हे।

15 **पक्षी**—लाल सिर, लाल चोच (**रैड क्रैस्टेड पोचर्ड—नेट्टा रुफीना**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—प्रजनन दक्षिणी फ्रास, हालैड, दक्षिणी रूस मे किरघिज स्टेप्स मे साइबेरिया तक। सर्दिया भूमध्यसागर, ब्रह्मा, भारत, पाकिस्तान और दक्षिणी चीन मे बिताती है।

शीत ऋतु मे उत्तर-पश्चिमी भारत मे बडी सख्या मे देखी जाती हैं। दक्षिण की ओर कम होती जाती है। भारत मे रूसी तुर्किस्तान से लेकर बेकल झील क्षेत्र तक की लाल सिर प्रवास यात्रा पर आती है।

16 **पक्षी**—बुरार नार (कॉमन पोचर्ड—**एयथ्या फेरीना**)

आगमन समय—अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च

विवरण—प्रजनन ब्रिटेन, स्केन्डेनेविया, साइबेरिया, हालैंड, जर्मनी, बालकन, काला सागर क्षेत्र मे। सर्दिया प्रजनन स्थल तथा नील घाटी के दक्षिण मे, भारत, ब्रह्मा, दक्षिण चीन मे बिताते हैं।

शीत ऋतु मे उत्तर-पश्चिमी भारत मे बडी सख्या मे देखे जाते है। पूर्व की ओर इनकी सख्या कम होती जाती है। उस समय नेपाल मे भी मिलते है। धार (मध्य प्रदेश) मे छल्ले पहनाए गए पक्षी साइबेरिया मे पाए गए।

17 **पक्षी**—सफेद आख वाली बतख (वाईट आईड पोचर्ड—**एयथ्या नाइरोसा**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—प्रजनन दक्षिण यूरोप, बालकन, पोलैड, पश्चिमी साइबेरिया, उत्तरी अफ्रीका, तिब्बत, ईरान, तुर्किस्तान, कश्मीर, पामीर, ब्रह्मा मे।

सर्दियो मे पूरे भारत मे फैल जाती है, उत्तरी भाग मे अधिक—दक्षिण की ओर कम। पूर्वी भारत मे भी कम देखी जाती है।

पाकिस्तान मे छल्ले पहनायी गई बतख तीन वर्ष बाद सर दरिया क्षेत्र मे मिली।

18 **पक्षी**—साइबेरियन सारस चीनी कुलग (साइबेरियन क्रेन, ग्रेट व्हाइट क्रेन—**ग्रुस ल्यूकोजरानस**)

आगमन समय—अक्तूबर-नवम्बर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—सर्दियो मे नियमित रूप से भारत और पाकिस्तान मे आते है। आमतौर से मध्य प्रदेश के दक्षिण मे और बिहार के पूर्व मे नही जाते। भरतपुर के किलादेव राष्ट्रीय उद्यान की झील इनका प्रिय "शीत-आवास गृह" है। वास्तव मे यह उद्यान साइबेरियन सारस के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

आमतौर से 3-4 परिवार अथवा 12 15 के झुड में ही देखे जाते हैं। किलादेव राष्ट्रीय उद्यान में ही इनका सबसे बडा झुड जिसमे 72 पक्षी थे देखा गया।

प्रजनन दक्षिण-पूर्वी रूस और साइबेरिया में—ओब नदी के उत्तरी कछार मे, तुर्कीस्तान, ट्रासबेकेलिया, उसरी लैंड मे। आमतौर से अक्तूबर के मध्य से लेकर नवम्बर के आखिर तक भारत में आ जाते हैं तथा मार्च-अप्रैल मे वापस चले जाते हैं। वापसी यात्रा मे आमतौर से चम्बा घाटी पर से, लगभग 4000 मीटर की ऊचाई पर, उडान भरते है।

अन्य सारसो की तुलना मे उथले पानी मे रहना अधिक पसन्द करता है। लगभग पूरी तरह से शाकाहारी है और आमतौर से पानी में उगने वाले पौधो के अकुर, बीच, बल्ब आदि ही खाता है। फसलो को हानि नही पहुचाता।

19 **पक्षी**—अबाबील(**ईस्टर्न स्वैलो—हिरुडो रस्टिका गुटुरालिस**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—अप्रैल

विवरण—प्रजनन तिब्बत, चीन, जापान और हिमालय मे—नेपाल से लेकर सिक्किम, भूटान, अरुणाचल प्रदेश, असम तक—लगभग 3000 मीटर की ऊचाई पर। सर्दी बिताने भारत के एकदम दक्षिणी भाग, श्रीलका, लक्षद्वीप और अदमान द्वीप समूह तक जाती है।

कर्नाटक और नीलगिरी पर्वत पर सितम्बर-अक्तूबर में आ जाती है। श्रीलका और अदमान मे सितम्बर के तीसरे-चौथे सप्ताह मे पहुच जाती है। यह सर्दियो में उत्तर और दक्षिण कौरिया, ताइवान, मलय, थाईलेंड आदि देशो मे भी आती है। अप्रैल मे अदमान से वापस चली जाती है।

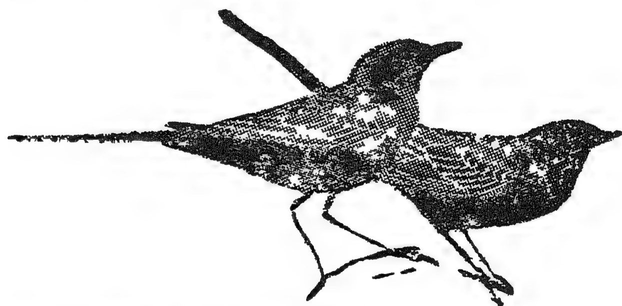
अबाबील, विशेष रूप से सर्दियो मे, झुडो मे रहती है। उस समय सुबह टेलीफोन के तारो, घरो, पेडो आदि पर इनके झुड देखे जा सकते हैं। पतिगो, कीडो आदि का शिकार करने के लिए अबाबील बहुत तेज (40 से 50 किलोमीटर प्रति घटे की गति से) उडती है। शिकार का पीछा करते समय यह आदमियो के बीच में से भी, मोटर, तागो से बचती हुई उडती है।

20 **पक्षी**—धोबन (इण्डियन व्हाइट वेगटेल—**मोटासिला अल्बा डुखुनेसिस**)

आगमन समय—सितम्बर-अक्तूबर

प्रस्थान समय—मार्च-अप्रैल

विवरण—प्रजनन पश्चिमी साइबेरिया मे—येनीसे से यूरल पर्वत तक। पूरे यूरेशिया मे चुकची प्रायद्वीप से लेकर जापान, चीन तक, तथा ब्रिटेन मे पायी जाती है। सर्दिया भारत, पाकिस्तान, अरब, इडो-चाइना, फिलीपीन और मध्य अफ्रीका मे बिताती है।



सर्दियो मे भारत मे बलोचिस्तान, सीमाप्रात (पाकिस्तान) पर से तथा गिलगिट और कश्मीर पर से उडान भर कर सितम्बर-अक्तूबर मे आ जाती है और हिमालय की तराई से लेकर कच्छ, महाराष्ट्र, कर्नाटक और आध्र प्रदेश तक फैल जाती है। आमतौर से हर पक्षी सर्दिया एक निश्चित स्थान पर ही बिताता है।

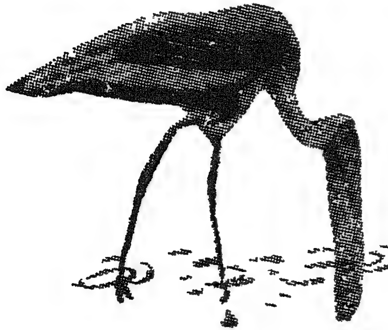
कच्छ मे छल्ले पहनायी गई धोबन, तीन-चार महीने बाद, 4000 किलोमीटर दूर रूस मे पायी गई।

अकेली या छोटे छोटे झुडो मे रहती है, पर शाम के समय सरकडो, गन्नो के खेत मे अथवा पत्तीदार पेडो पर बडे-बडे झुडो मे एकत्रित हो जाती है। शहरो मे घरो की छतो पर, खेतो के मैदानो मे

इसके झुड देखे जा सकते है। लगभग हमेशा ही धरती पर चलकर ही कीडे-मकोडो का शिकार करती है।

तालिका—2
कुछ प्रमुख स्थानीय प्रवासी पक्षी

1 **पक्षी**—दोख (पेन्टेड स्टार्क—आइबिस ल्यूकोसेफैलस)



आगमन समय—अगस्त-सितम्बर

प्रस्थान समय—जनवरी-फरवरी

विवरण—वर्षा के बाद प्रजनन के लिए किसी झील या तालाब के निकट के पेडो पर झुडो में इकट्ठे हो जाते है। अडो से बच्चे निकलने के बाद आसपास के खेतो मे चले जाते हैं। वर्षा की मात्रा कम हो जाने से प्रजनन क्षमता भी कम हो जाती है।

दिल्ली के चिडियाघर में हर वर्ष सैकडो की सख्या मे आते हैं।

2 **पक्षी**—गजपोब, सरगनो (इडियन ब्लैक विग स्टीलट—हिमेन्टोपस हिमेन्टोपस)

आगमन समय—मार्च-अप्रैल

प्रस्थान समय—अगस्त

विवरण—मार्च-अप्रैल मे झुडो में यमुना तट पर व सुलतानपुर में देखे जा सकते है। इन्ही दिनो ये प्रजनन करते हैं। ये टिट्हरो को

भाति जमीन में घोसला बनाते हैं।

3 **पक्षी**—कठफोडा (यैलो फ्रन्टेड पाइड वुडपैकर—**हैराड्रौकापस मराटैसिस**)

आगमन समय—मार्च-अप्रैल

प्रस्थान समय—अगस्त-सितम्बर

विवरण—मार्च-अप्रैल के महीनो मे ये पक्षी घने जगलो मे प्रजनन के लिए आते है। ये चोच से पेड के तने मे छेद करके बिल बनाकर घोसला बनाते है जिनमे अडे देते है तथा प्रजनन के बाद हिमालय व दक्षिण भारत मे फैल जाते है.

4 **पक्षी**—शकरखोरा —(पर्पल सन बर्ड—**बैक्टेरीनेआ एशियाटिका**)

आगमन समय—मार्च-अप्रैल

प्रस्थान समय—अगस्त-सितम्बर

विवरण—गर्मी के शुरू होते ही ये घने वृक्षो व फूलो वाले बागो व जगलो मे प्रजनन के लिए आते है। मादा हल्के भूरे रग की होती है व नर काले नीले रग का। इनका घोसला टहनी से लटका हुआ होता है। गर्मियो मे दिल्ली के चिडियाघर और सुल्तानपुर झील के पास, इनके घोसले देखे जा सकते है।

5. **पक्षी**—पीलक (गोल्डन ओरियल—**आरिऔलस आरिऔलस**)

आगमन समय—अप्रैल-मई

प्रस्थान समय—अगस्त-सितम्बर

विवरण—दिल्ली के चिडियाघर मे इनके घोसले व बच्चे गर्मियो मे देखे जाते है। अगस्त मे ये प्रजनन स्थान को छोडकर वापस चले जाते है।

किलादेव राष्ट्रीय उद्यान

पक्षियो, विशेष रूप से भारतीय पक्षियो की चर्चा करते समय तीन नाम हर व्यक्ति के मस्तिष्क मे एकाएक उभर आते है। पहला नाम एक जगह का है और दूसरा है एक व्यक्ति का और तीसरा एक सस्था का। स्थान भरतपुर, व्यक्ति डा० सलीमअली और सस्था बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी।

भरतपुर मे है विश्व प्रसिद्ध अभ्यारण घाना पक्षी विहार जिसे आजकल किलादेव राष्ट्रीय उद्यान कहा जाता है। यह विश्व भर के

पक्षी प्रेमियो के लिए तीर्थ है। हमारे देश मे यही एकमात्र ऐसा स्थल है जहा प्रवासी साइबेरियन सारस का प्रामाणिक अध्ययन किया गया है।

किलादेव राष्ट्रीय उद्यान राजस्थान मे भरतपुर शहर से दो किलो मीटर दक्षिण-पूर्व मे स्थित है। यह मथुरा से 38 किलोमीटर और दिल्ली से लगभग 180 किलोमीटर दूर है। इसका कुल क्षेत्रफल 29 वर्ग किलोमीटर है। यह सपाट मैदान है जिसका ढाल इसके मध्य की ओर है। इससे वर्षा का पानी उद्यान के लगभग बीच मे एकत्रित होता जाता है। इससे वहा लगभग 8 5 वर्ग किलोमीटर की एक झील बन गई है। दूर देशो के आने वाले जल पक्षी इस झील मे ही आते हैं और सर्दी यही बिताते है। इसलिए इस झील का महत्व बहुत अधिक है।

भरतपुर मे बहुत अधिक वर्षा नही होती। वहा जून से सितम्बर तक वर्षा होती है पर उसका अधिकाश भाग जलाई अगस्त मे बरसता है। आमतौर से वर्ष भर मे 30 से 50 सेन्टीमीटर पानी बरसता है। यह इतना नही होता कि झील वर्ष भर भरी रहे। वह गर्मियो मे सूख जाती है। इसीलिए भरतपुर के निकट से बहने वाली दो नदियो, गम्भीर और बाणगगा का पानी झील मे भरा जाता है। पर पानी सीधा नदियो से न लेकर एक तालाब, अजनबध से लिया जाता है जो बरसात मे इन नदियो के पानी से भर जाता है। उस तालाब से पानी आधा किलोमीटर लम्बी नहर (घाना नहर) से, झील मे भेजा जाता है। नहर मे ऐसे गेट लगे हुए है जिनसे पानी की मात्रा को नियत्रित किया जा सकता है।

झील मे कई मिट्टी की दीवारे है जिनसे वह अनेक भागो म विभक्त हो गई है। उसके कुछ भाग काफी उथले है और कुछ गहरे। झील में पानी बरसात मे ही भरा जाता है। इसलिए गर्मी मे झील लगभग सूख जाती है।

अजनबध से झील मे जो पानी आता है उसमे गम्भीर और बाण गगा नदियो मे पायी जाने वाली मछलिया भी बडी सख्या मे मौजूद होती है। इनमे से कुछ जातियो की मछलिया झील मे प्रजनन भी करती है। क्योकि नदियो का पानी केवल बरसात (जुलाई-अगस्त) मे ही आता है इसलिए उसके बाद साल भर नई मछलिया झील मे नही आती। गर्मी की ऋतु मे मछलियो की आबादी बहुत कम हो जाती है। पर सर्दियो मे जब देश के विभिन्न क्षेत्रो से तथा दूर देशो से विभिन्न जातियो के पक्षी यहा आते है, झील मे मछलियो की आबादी पर्याप्त होती है।

इस झील मे विभिन्न किस्मो की जलीय वनस्पति उगती है और इसके चारो ओर घास के मैदान है। इन मैदानो में जगह-जगह पर झाडिया है और नीम, बबूल, पीपल आदि के वृक्षो के झुरमुट भी। इसलिए इस उद्यान मे, प्रवास-यात्रा पर आने वाले पक्षियो मे, थलीय पक्षियो की सख्या भी काफी अधिक होती है।

इस उद्यान मे दूर देशो से आने वाले कुछ प्रवासी पक्षी है सीखपर (**ऐनस एक्युटा**), छोटी मुर्गाबी (**ऐनस क्रेका**), पिल (**ऐनस सहीपेरा**), पटारी (**ऐनस क्वेरक्वेडुला**), घिराह (**ऐनस क्लाइपोटा**), लाल सिर डूम (**नेट्टा रूफीना**), बुरार नार (**एयथ्या फेरीना**), गुडगुडा (**नेटापस कोरोमैनडेलिनस**), साइबेरियन सारस (**ग्रुस ल्यूकोजरानस**), कैम (**पोरफेरिया पोरफेरिया**), आरी (**फूलिका अटरा**), हस (**ऐनसर ऐनसर**), राजहस (**ऐनसर इडिकम**) आदि।

भारत के विभिन्न भागो से आने वाले कुछ प्रवासी पक्षी है पनकौवा (**फालक्रोकोरक्स नाईगर**), पनडुब्बी (**एनहिना रूफा**), अनजन (**अरडिया सिनेरिया**), सुर्खिया बगला (**बुबुलक्स आईबीस**), करचिआ बगला (**इग्रेटा गारजेटा**), वाक (**निक्टीकोरक्स निक्टीकोरक्स**), दोख (**मैक्टीरिया लुक्कोसिफेला**), घोघिल (**ऐनसटोनस ऑसोटेनस**) सफेद बाज (**थरिसकिओरनिस ऐथिओपिका**), गिद्ध (**जिपस वेनगालेनसिस**), दोगरा चील (**सिपलोनिस चीला**) आदि।

किलादेव राष्ट्रीय उद्यान का महत्व आज ऐसे केन्द्र के रूप मे भी है जहा हर वर्ष हजारो पक्षियो को छल्ले पहनाए जाते है। उद्यान के इस केन्द्र के रूप मे विकसित होने का भी एक इतिहास है।

आज से लगभग 250 वर्ष पूर्व भरतपुर के तत्कालीन महाराजा ने इस क्षेत्र को (झील के आसपास के क्षेत्र को) जलपक्षियो के लिए शरणागार के रूप मे विकसित किया था। उनका उद्देश्य एक ऐसा स्थल बनाना था जहा वे जलपक्षियो का शिकार कर सके। साथ ही वे एक ऐसा चारागाह भी बनाना चाहते थे जहा गाये और भैसे स्वच्छन्द रूप से चर सके पर फसलो को कोई हानि न पहुचे। इसके लिए उन्हे झील के आसपास का क्षेत्र बहुत उपयुक्त लगा। उन्होने इस क्षेत्र को पक्षियो का शरणागार बना दिया। यह क्षेत्र आसपास के रेगिस्तान मे अति आवश्यक नम स्थल उपलब्ध कराता है। इसलिए यहा दूर-दूर

से पक्षी आते हैं। इनमे विदेशी पक्षी भी शामिल होते है। उक्त पक्षियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे जानकारी हासिल करने के उद्देश्य से उन्नीस सौ तीस के दशक मे ही बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी यहा एक वलयन केन्द्र (जहा पक्षियो को छल्ले पहनाये जा सके) स्थापित करना चाहती थी। इस बारे मे 1953 मे, सोसायटी के तत्कालीन क्यूरेटर, श्री प्रेटर, ने डा० सलीम अली से पहल करने का अनुरोध भी किया था। परन्तु उस समय सोसायटी का अनुरोध सफल नही हो पाया। उस समय यह "घाना पक्षी विहार" कहलाता था।

देश के आजाद होने से पहले यह पक्षी विहार भरतपुर के महाराजा का निजी (पक्षी) शिकार स्थल था जहा वे अपने दोस्तो और मेहमानो के साथ मिलकर शिकार किया करते थे। ऐसा वर्ष मे तीन-चार बार होता था। इन "शिकार-मेलो" मे अनेक बार महाराजा गवर्नरो, बडे सैनिक अधिकारियो और वाइसरायो तक को आमन्त्रित कर लेते थे। उस समय अधिकारी आमतौर से अग्रेज होते थे। इन शिकार-मेलो के लिए युद्ध स्तर पर तैयारी की जाती थी। हरकारे ढोल पीटते रहते थे जिससे पक्षी उडते रहे, बैठने न पाए। इन उडते हुए पक्षियो के झुड शिकारियो के सामने से गुजरते थे जो उन्हे अपनी गोलियो का शिकार बना लेते थे। इन मेलो मे हजारो बतखे, हस, पनकौवे, सारस मारे जाते थे।

एक ऐसे ही मेले का जिक्र करते हुए डा० सलीम अली ने अपनी आत्मकथा **"द फाल आफ स्पैरो"** मे लिखा है "नवम्बर 1938 मे आयोजित शिकार समारोह, जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन वायसराय, लार्ड लिनलिथगो, कर रहे थे, 4273 बतखो और हसो की हत्या की गई जो उस समय तक का रिकार्ड था। यद्यपि इन हत्याओ मे स्वय बडे लाट साहब का योगदान प्रभावशाली नही था, पर गोलिया चलाने मे उन्होने अवश्य एक रिकार्ड स्थापित कर दिया था। उन्होने स्वय अपने कधे पर 12 बोर की बदूक रखकर एक दिन मे 1900 गोलिया चलायी थी। लाट साहब की कद-काठी (वे काफी ऊचे, पूरे और हट्टे-कट्टे व्यक्ति थे) को देखते हुए भी एक दिन मे इतनी गोलिया चलाना आसान काम नही था।"

देश को आजादी मिलने के बाद जब भरतपुर के (जो उस समय तक एक देशी रियासत थी) भारतीय गणतन्त्र मे विलय होने की बात

उठी तब महाराजा ने यह शर्त रखी कि विलय के बाद भी केवल महा-राजा और उनके दोस्त ही घाना पक्षी विहार मे शिकार कर सकेगे। हालात की नाजुकता देखते हुए भारत सरकार ने इस शर्त को मान लिया था। पर भरतपुर की आम जनता को इस बात पर बहुत क्षोभ हुआ कि केवल महाराजा और उनके दोस्त ही घाना पक्षी विहार मे शिकार कर सकेंगे—अन्य लोग नही। उसने इसे महाराजा का स्वार्थ-पूर्ण रवैया बताया और आन्दोलन करने की तैयारी कर दी। जनता ने, कुछ स्वार्थी राजनीतिज्ञो के सिखाने पर यह प्रस्ताव रखा कि इस पक्षी विहार को समाप्त करके खेत बना दिए जाए और उन्हे गरीब जनता को दे दिया जाए। इसकी खबर डा० सलीम अली को लग गई



डॉ० सलीम अली

क्योकि उस समय वे भरतपुर मे ही थे। वे तत्काल ही अपने दो दोस्तो, होरेस और जनरल हेरोल्ड विलियम्स, (जो स्वय भी पक्षी-प्रेमी थे) के साथ पडित नेहरू से मिले। नेहरू जी के व्यक्तिगत हस्तक्षेप करने से घाना पक्षी विहार अपनी निश्चित मृत्यु से बच गया। उनकी सलाह

पर ही श्री रफी अहमद किदवई ने, जो उस समय केन्द्रीय कृषि मन्त्री थे, इस पक्षो विहार की भूमि और जल ससाधनो की विशेषज्ञो से जाच करायी। कालातर मे भरतपुर के महाराज को भी पक्षियो का शिकार करने का अपना अधिकार स्वय ही त्याग देने के लिए राजी कर लिया गया। इस प्रकार डा० सलीम अली के अथक प्रयासो के फलस्वरूप इस पक्षी विहार को नया जीवन मिला।

अब डा० अली का उद्देश्य था घाना पक्षी विहार को आधुनिक वलयन केन्द्र और जलपक्षी उद्यान बनाना। इस बारे मे वर्ष 1957 मे घटनाचक्र एकाएक उनके हित मे बहुत तेजी से घूमा। उन्हे ऐसी जगह से मदद मिली जिसके बारे मे वे सोच भी नही सकते थे। उस वष कर्नाटक के वन प्रदेश मे अचानक ही एक वायरसजन्य रोग फैला। यह मनुष्यो और बन्दरो को समान रूप से प्रभावित करता था। वायरस रिसर्च इस्टीट्यूट, पुणे, ने इस बारे मे यह सुझाव दिया कि "यह बन्दर रोग" ओमस्क हेमोरजिक फीवर और एशियन स्प्रिग—समर एनसेफ्लाइटिस से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है तथा इसके वायरस उन जुओ से फैलते है जो प्रवासो पक्षियो से चिपट कर भारत आ जाती है। दूसरे शब्दो मे साइबेरिया और रूस के अन्य भागो से आने वाले प्रवासी पक्षी अपने साथ बन्दर रोग के वायरसो से ग्रस्त जुए भी लाते है। विश्व स्वास्थ्य सगठन को यह सुझाव तर्कसगत प्रतीत हुआ और उसने डा० सलीम अली से इस बारे मे आगे खोजबीन करने का अनुरोध किया। इस प्रकार 1959 मे विश्व स्वास्थ्य सगठन के आर्थिक सहयोग से भारत मे प्रवासी पक्षियो के अध्ययन करने की एक वृहत योजना की शुरुआत हुई। निश्चय ही पक्षियो को छल्ले पहनाने का कार्यक्रम इस अध्ययन का एक आवश्यक अग था। इस प्रकार आरम्भ हुआ बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी का वलयन कार्यक्रम और घाना पक्षी विहार का आधुनिकीकरण।

पर उक्त कार्यक्रम का कार्यान्वियन आसानी से नही हुआ। उसमे अनेक अडचने आयी। 1960 के दशक के मध्य मे कोरिया युद्ध के कारण सयुक्त राज्य अमेरिका ने विश्व स्वास्थ्य सगठन को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया। फलस्वरूप सोसायटी की सहायता भी बन्द हो गई। पर ऐसे मौके पर अमेरिका की ही एक सस्था, स्मिथसोनियन इस्टीट्यूशन, मदद के लिए आगे आ गई। इसी समय घटनाचक्र

एकाएक फिर तेजी से घूमा।

अमेरिका की आर्मी मेडिकल लेबोरेटरी की बेंकाक स्थित एक शाखा पिछले वर्षों से दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे पक्षी वलयन हेतु एक वृहत कार्यक्रम चला रही थी। वह बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी के पक्षी वलयन कार्यक्रम से बहुत प्रभावित थी। जब उसने सुना कि सोसायटी का यह कार्यक्रम आर्थिक सहायता के अभाव मे समय से कही पूव समाप्त होने वाला है तब उसने एक शर्त पर आर्थिक सहायता प्रदान करने की पेशकश की। वह थी कि बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी को अपने परिणाम सयुक्त राज्य अमेरिका की थलसेना अनुसधान और विकास ग्रुप को उपलब्ध कराने होगे। डा० सलीम अली ने, जो सोसायटी की ओर से वार्ता कर रहे थे, यह शत बिना किसी एतराज के मान ली। बाद मे इस शत को लेकर समाचारपत्रो और ससद मे बहुत शोर-शराबा हुआ। डा० अली पर यह आरोप लगाया कि वे रूस से प्राप्त होने वाली जानकारियो (भारत मे प्रवासी पक्षी आमतौर से रूस से ही आते है) को सयुक्त राज्य अमेरिका को उपलब्ध करा रहे हैं। इस आरोप की जाच करने के लिए दो समितिया बैठायी गईं। उन्होने डा० अली को निर्दोष पाया। पर इन निष्कर्षों से सासद सतुष्ट नही हुए। अत मे तीसरी, विस्तृत अधिकारो वाली एक समिति नियुक्त की गई जिसमे वायरस रिसच सेन्टर, पुणे टाटा इस्टीट्यूट आफ फडामेन्टल रिसर्च और जूलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के प्रतिनिधि थे। इस समिति ने पूरे मामले की अच्छी तरह जाच की और पहली समिति के निष्कर्षो को सही पाया। तब जाकर डा० अली आरोपो से मुक्त हुए। साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि भविष्य मे अमेरिका से मिलने वाली आर्थिक सहायता भारत सरकार के माध्यम से, बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी को दी जायेगी। यह समस्या सुलझ जाने के बाद बोम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी का पक्षियो को छल्ले पहनाने के कार्यक्रम को नया जीवन मिल गया। डा०सलीम अली अपने सहयोगियो के साथ दूर देशो से आने वाले तथा स्थानीय (भारत के ही विभिन्न भागो से आने वाले) प्रवासी पक्षियो को छल्ले पहनाने मे पूरी तरह से जुट गए।

यहा यह बता देना भी तकसगत होगा कि विश्व स्वास्थ्य सगठन द्वारा बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी को आर्थिक सहायता प्रदान करने

के पहले भी डा० सलीम अली सर्दियो मे भरतपुर जाकर विभिन्न प्रवासी पक्षियो—बतखो, हसो, बगलो, पनकौवो आदि का नियमित रूप से अध्ययन करते रहते थे। वे स्थानीय प्रवासी पक्षियो को भी छल्ले पहनाते थे। वास्तव मे डा० सलीम अली के अनुसार रडार आदि आधुनिक उपकरणो के उपलब्ध होने के बावजूद भी वलयन प्रवासी पक्षियो का अध्ययन करने की बहुत उपयुक्त विधि है। पहले वे महगे आयातित छल्ले उपलब्ध न होने पर स्थानीय तौर पर, हाथ से बनाए गए छल्लो से ही काम चला लेते थे यद्यपि उन्हे बनाने और पहनाने मे बहुत समय और परिश्रम लगता था। शुरू के वर्षों मे उन्होने थलीय पक्षियो को ही छल्ले पहनाए क्योकि जल पक्षियो को पकडना कठिन था। उनके पास ऐसे व्यक्ति नही थे जो झील के पानी मे घुसकर जल पक्षियो को पकड सके। बाद मे बिहार की साहनी और मिरशीकर जन-जातियो के व्यक्ति, जिनका पेशा ही जल पक्षी पकडना है, के मिल जाने के बाद डा० अली जल पक्षियो को भी बडी सख्या मे छल्ले पहनाने लगे।

यद्यपि अन्य स्थानो, झीलो, नदियो पर दूर देशो के पक्षी प्रवास-यात्रा पर आते हैं पर घाना की झील ही उन्हे विशेष रूप से पसन्द है। इसका सही कारण अब भी पक्षी वैज्ञानिको के लिए रहस्य बना हुआ है। इसके लिए बहुत हद तक पक्षी विहार की स्थिति, जलवायु तथा अन्य पर्यायवरणोय परिस्थितिया उत्तरदायी है। जैसा आप पहले पढ चुके है यहा की झील पक्षियो का अत्यन्त प्रिय स्थल है।

3 प्रवासी स्तनधारी

स्तनधारी काफी विकसित जीव है और विकास क्रम मे पृथ्वी पर उनका पदापण अन्य वर्गो के जीवो के बाद हुआ था। स्तनधारी जीवो की मादाए अण्डे नही देती (प्लेटिपस जैसे प्राथमिक स्तनधारी के अतिरिक्त), वे बच्चे जनती है और उनके शरीर पर जीवन काल मे कभी-न-कभी बाल होते है (ह्वेल, डालफिन, पारपोयज इस बारे मे अपवाद है)। ये बाल उनके शरीर को अत्यधिक गम अथवा ठडा होने से बचाते है। आमतौर से स्तनधारी स्वय को अपने निवास स्थान की जलवायु और परिस्थितियो के अनुसार ढाल लेते हैं। वे भीषण गर्मी सह सकते है और कडाके की ठड भी। वे पहाडो पर भी रह सकते हे और निचले मैदानो पर भो। अधिकाश स्तनधारी थलचर है पर ह्वेल, सील और डालफिन जैसे स्तनधारी जल को अपना स्थायो निवास बना चुके है, जबकि चमगादड नभ मे भी उड सकता है। वह भी एकमात्र नभचर स्तनधारी है। सफेद भालू जैसे सुदूर उत्तरी क्षेत्र के निवासी भीषण सर्दी से रक्षा करने के लिए शीत निद्रा भी ल लेते हैं पर अनेक स्तनधारियो को मौसम के थपेडो से बचने के लिए प्रवास-यात्राये करनी पडती है।

स्तनधारियो मे छोटे-बडे अनेक वशो और जातियो के जीव शामिल है। उनमे पृथ्वी पर अब तक विकसित सबसे बडे प्राणी, नीली ह्वेल से लेकर चूहे जैसे छोटे जीव तक अनेक प्रकृतियो और गुणधर्मो के जीव शामिल है। अधिकाश स्तनधारी थलचर है। इसलिए पहले, प्रवास यात्रा करने वाले थलचर स्तनधारियो की चर्चा कर ले।

थलचर स्तनधारी

निश्चय ही थलचर स्तनधारी थल पर ही प्रवास यात्रा करते है। ऐसे जीवो को अपनी यात्राओ के दौरान नभचरो और जलचरो की अपेक्षा अधिक बाधाओ का सामना करना पडता है। उन्हे ऊच-ऊचे

पवन लाघने पडते है, गहरी नदियो को पार करना पडता है, भयानक जगलो से गुजरना होता है और सैकडो किलोमीटर लम्बे गर्म रेगिस्तानो मे से यात्राये करनी पडती है। इसलिए अपेक्षाकृत कम जातियो के थलीय स्तनधारी ही प्रवास यात्राये करते है। इनके झुड भी अपेक्षाकृत काफी छोटे होते है। साथ ही इनकी प्रवास-यात्राये भी काफी छोटी होती है।

पिछले लगभग एक सौ वर्षों मे थलीय स्तनधारियो का अधाधुध शिकार हुआ है। इससे अब इनकी सख्या काफी कम हो गई है। उससे पहले अक्सर ही स्तनधारियो के ऐसे झुड जिनमे कई हजार जानवर होते थे, प्रवास-यात्रा करते देखे जाते थे। ऐसे झुड जगली भैसो, रेनडीयरो, स्प्रिगबोक हिरनो आदि के होते थे। यद्यपि प्रवास-यात्रा करने वाले स्तनधारियो के उदाहरण देते समय अक्सर ही अफ्रीका के जीवो का ही वर्णन किया जाता है पर हमारे तथा अन्य देशो के स्तनधारी भी प्रवास-यात्रा करते है।

अब इनकी प्रवास-यात्राओ के मार्गो मे मनुष्यो की आबादिया भी बस गई है। इससे इनकी स्वाभाविक यात्राओ के मार्ग भी बदल गए है।

अब अधिकाश प्रवासी स्तनधारी मनुष्य से दूर भागने का प्रयत्न करते है और कभी-कभी अपनी रक्षा हेतु, मनुष्य पर आकमण भी कर देते है। इन्हे 'पकडना' और इन पर निशान लगाना आसान नही होता। इनके साथ एक और बडी अडचन यह है कि अधिकाश स्तनधारी रात के समय ही यात्रा करते है। इन सब कारणो से इनकी प्रवास-यात्राओ के बारे मे जानकारी इकट्ठा करना कठिन हो जाता है।

शेर

शेर या बाघ ऐसा जानवर है जो विभिन्न वातावरणो मे आसानी से रह सकता है। वह साइबेरिया जैसे ठडे प्रदेश मे भी रह सकता है और इडोनेशिया जैसी गर्म और नम जगह भी। शेर एक समय हमारे देश मे हर जगल मे पाया जाता था। वनो के काटने तथा अधाधुध शिकार करने के फलस्वरूप वह अनेक जगलो से एकदम लुप्त हो गया है। फिर भी वह हिमालय की तराई जैसे ठडे प्रदेश से लेकर सुन्दरवन (गगा के

डेल्टा) जैसे गर्म और नम प्रदेश तक तथा राजस्थान के अत्यन्त गर्म इलाके मे, अनेक जलवायु क्षेत्रो मे पाया जाता है। वह आमतौर से स्वय को विविध किस्मो की जलवायु परिस्थितियो और विभिन्न प्रकार के वातावरणो के अनुकूल ढाल लेता है। इसीलिए आमनौर मे यह समझा जाता है कि शेर को प्रवास यात्राये करने की आवश्यक्ता नही होनी। पर अध्ययनो मे यह पाया गया है कि शेर भी प्रवास यात्रा करता है हालाकि ये यात्राये लम्बी नही होती। मजेदार बात यह है कि शेरो की प्रवास-यात्राओ के उदाहरण हमारे देश मे ही मिले है।

हमारे देश और नेपाल की सीमा पर एक राष्ट्रीय उद्यान है—दुधवा राष्ट्रीय उद्यान। यह 810 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे फैला है। इसमे शेर सहित अनेक जानवर स्वच्छन्द रूप से विचरण करते है। वर्षा ऋतु मे इस उद्यान के बडे भाग मे पानी भर जाता है। इससे चारा नष्ट हो जाता है और अनेक किस्मो के हानिकारी कीडे उत्पन्न हो जाते हैं। चारे की तलाश मे तथा हानिकारी कीडो से बचने के लिए हिरन आदि जानवर अपक्षाकृत ऊचे स्थानो पर चले जाते हैं और वहा उस समय तक, लगभग फरवरी तक, रहते है जब तक उद्यान के बाकी हिस्सो से पानी सूख नही जाता। ये जानवर ही शेरो के मुख्य भोजन है। इसलिए शेर भी इनके पीछे-पीछे ऊचे स्थानो पर चले जाते हैं और उन्ही के साथ फिर वापस आ जाते है। ऐसा हर वर्ष होता है। वैसे यह प्रवास-यात्रा कुछ ही किलोमीटर लम्बी होती है।

राजस्थान मे अरावली पहाडियो की तलहटी मे स्थित रणथम्भोर राष्ट्रीय उद्यान मे भी ऐसा ही होता है। वहा वर्षा ऋतु मे हिरन, चीतल, नीलगाय, सूअर आदि शाकाहारी जानवर पानी से बचने के लिए पहाडियो पर चले जाते हैं। उनके साथ शेर भी वहा पहुच जाते हैं क्योकि राजस्थान मे वर्षा बहुत थोडे समय के लिए होती है इसलिए सितम्बर मास में ही मैदानो का पानी सूख जाता है और उसके साथ ही शाकाहारी जानवर तथा शेर वापस लौट आते हैं।

मेलघट राष्ट्रीय उद्यान (महाराष्ट्र) में गर्मी की ऋतु मे पानी की कमी हो जाती है। वहा जानवरो को पानी की तलाश में मीलो भटकना पडता है। वर्षा ऋतु मे वे वापिस आ जाते हैं।

पालमू राष्ट्रीय उद्यान मे भी ऐसा ही होता है। वहा शेर अपने

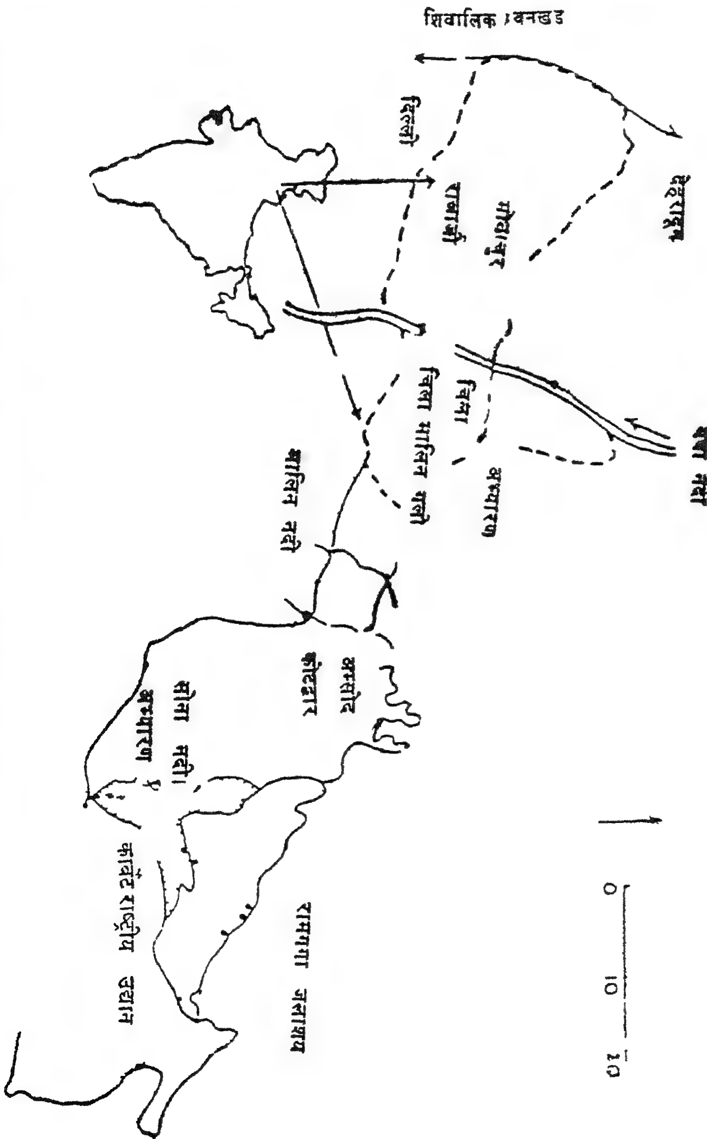
उद्यान की सीमा पार करके कभी-कभी खेतो मे भी आ जाते हैं। दो-तीन महीने वहा रहकर वे वापस आ जाते है।

हाथी

थल के जीवो मे सबसे बडा जीव है हाथी। वह अफ्रीका तथा दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशो मे ही पाया जाता है। अफ्रीका के हाथी भारतीय हाथी से बडे होते है। जगली हाथी नियमित रूप से प्रवास यात्रा करते है। आमतौर से जगली हाथी एक खास जगह जाकर ही जोडा बनाते है और वहा हथनी बच्चे जनती है। प्रसिद्ध जीववैज्ञानिक सी० डब्लू० हाब्ले ने केन्या (अफ्रीका) के एक ऐसे प्रजनन स्थल, मार्सबित जगल, का वर्णन किया है। उनके अनुसार जोडा बनाने और प्रजनन करने के लिए हाथी 700 किलोमीटर जैसी लम्बी प्रवास-यात्राये करते है। हथनी की गर्भावधि वर्ष-भर से अधिक होती है। इसलिए हाथियो के झुडो को प्रजनन स्थल तक जाने और वहा से वापिस आने मे तीन वर्ष तक का समय लग जाता है। इन यात्राओ पर हाथी बडे झुडो मे निकलते है। कई बार हाथी भोजन और पानी की तलाश मे भी काफी दूर-दूर तक चले जाते है।



जगली हाथी आमतौर से गर्मी की ऋतु मे घने जगलो में चले जाते है पर वर्षा ऋतु मे खुले मैदानो मे आ जाते हैं। वे अधिक पानी से बचना चाहते है। बरसात के दिनो मे पेडो से टपकती पानी की बूदे



हाथी प्रवास यात्रा पर राजाजी राष्ट्रीय उद्यान से कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान मे जाते है और वापस आते है।

उन्हे सहन नही होती। साथ ही उस समय जगल मे बडी सख्या मे कीडें मकोडे भी उत्पन्न हो जाते है। इनमे से अधिकाश कष्टदायी और हानिकारी होते है। इनसे बचने के लिए भी हाथी बरसात मे खुले मैदान मे आ जाते है।

बरसात मे घने जगलो से खुले मैदानी इलाके मे आने और गर्मी मे वापिस जाने के लिए भी हाथियो को कभी-कभी कई सौ किलोमीटर की यात्रा करनी पड जाती है।

अपनी प्रवास-यात्रा के लिए हाथी आमतौर से एक खास माग चुनते है। वैसे हाथियो के चलने से ही स्वय पथ बन जाते है।

हमारे देश के विभिन्न राष्ट्रीय उद्यानो मे रहने वाले हाथी भी प्रवास-यात्राये करते है। उत्तर प्रदेश मे देहरादून के पास राजाजी राष्ट्रीय उद्यान है। इसमे हाथी रहते है। ये हाथी प्रतिवर्ष लगभग 400 किलोमीटर दूर, रामनगर (उत्तर प्रदेश) के पास स्थित कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान चले जाते है। वहा दो-तीन महीने बिताने के बाद वापस आ जाते है। ये झुडो मे चलते है।

दक्षिण भारत के कई राष्ट्रीय उद्यानो मे हाथी पाए जाते हैं। बदीपुर (कर्नाटक) और मधुमलई (तमिलनाडु) के राष्ट्रीय उद्यान इनके उदाहरण है। अक्तूबर से मार्च तक हाथी मधुमलई मे रहते है। इसके बाद अप्रैल मास मे बन्दीपुर आ जाते है। उस समय यहा हरी-भरी घास होती है। यहा वे गर्मी और वर्षा ऋतु बिताते है। वर्षा ऋतु के अन्त मे ये मधुमलई वापस चले जाते हैं।

हिरन

हिरन अनेक जातियो के होते है। वे गर्म मरुस्थलो मे भी पाए जाते है और अफ्रीका की घास के मैदानो मे भी। वे उत्तरी साइबेरिया के सदा बर्फ से ढके रहने वाले इलाको मे भी मिलते है और भारत के जगलो मे भी। इनकी अनेक जातिया, नियमित रूप से प्रवास यात्राये करती है। अफ्रीका के दक्षिण-पश्चिमी भाग के स्प्रिगबोक(**एन्टीडोरकस मेरसुपिअलिस**) नामक हिरन पिछली शताब्दी तक बहुत बडे-बडे झुडो मे, भोजन और पानी की तलाश मे, लम्बी-लम्बी यात्राये करते थे। पर पिछले कुछ वर्षो मे इनका बहुत बडी सख्या मे शिकार हुआ। इससे इनकी सख्या कम होती चली गई। साथ ही इनके प्रवास-यात्रा

मार्गो मे बाधाये आने लगा । फलस्वरूप इनके झुड छोटे होते गए और प्रवास-यात्रा के माग बदल गए । आजकल स्प्रिगबोक हिरन अफ्रीका के दक्षिण-पश्चिमी भाग मे स्थित, कालाहारी मरुस्थल तक ही सीमित रह गए है ।

कैरीबो—सुदूर उत्तर के बर्फीले प्रदेशो मे साल मे नौ महीने बर्फ पडती है । ये प्रदेश एशिया, यूरोप और उत्तर अमेरिका महाद्वीपो मे फले हुए है और इनमे कनाडा, नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड और रूस के उत्तरी भाग आते है । ये प्रदेश टुड्रा कहलाते हैं । यहा एस्किमो लोग



यूरोपीय रेनडीयर—अपने अमेरिकी सबधी कैरीबो के सदृश रेनडीयर भी नियमित रूप से प्रवास-यात्रा करते हैं ।

रहते हैं । ये बर्फ के ही घर बनाकर रहते हैं । ये हिरन की एक विशिष्ट जाति के जानवर, रेनडीयर, पालते है । जो बारहसीगे जैसा ऊचा और मजबूत जानवर होता है । एस्किमो लोगो के लिए यह बहुत उपयोगी है । वे इस पर सवारी करते हैं । इसका दूध पीते हैं, मास खाते हैं और इसकी खाल के कपडे पहनते हैं । पर उन्हे रेनडीयर के लिए, गाय-भैस की तरह चारे-पानी या रहने का इन्तजाम नही करना पडता । काम लेने के बाद इसे खुला छोड दिया जाता है । वह खुद अपना चारा—

काई लाइकेन आदि ढूढ लेता है। स्वभाव से वह घुमक्कड जीव है। सर्दियो मे जब टुड्रा प्रदेश अत्यधिक ठडा हो जाता है और वहा बर्फ के सिवाय कुछ भी नही रहता तब रेनडीयरो के झुड के झुड दक्षिण की ओर, जहा मौसम अपेक्षाकृत गर्म होता है, आ जाते हैं। निश्चय ही वसत ऋतु आरम्भ होते ही ये झुड पुन टुड्रा प्रदेश की ओर चल पडते हैं। रेनडीयर के इन झुडो के साथ एस्किमो लोगो को भी खाना-बदोशो की तरह घूमना पडता है।

रेनडीयर की जगली जातिया भी है जो 'कैरीबो' कहलाती है। कनाडा के टुड्रा प्रदेश मे कैरीबो और उनकी प्रवास-यात्राओ के बारे मे गहन अध्ययन किए गए है। कैरीबो हर वर्ष, नियमित रूप से, प्रवास-यात्रा करते है। सर्दी आरम्भ होने से कुछ पहले इनकी सम्पूर्ण आबादी ही एक निश्चित समय पर, दक्षिण के अपेक्षाकृत गर्म प्रदेशो की ओर, चल पडती है। आज से लगभग 100 वर्ष पहले तक जब कनाडा मे कैरीवोओ का अधाधुध शिकार नही हुआ था, उनके बहुत बडे बडे झुड जिनमे 2,00,000 से भी अधिक जानवर होते थे, प्रवास-यात्रा करते देखे जाते थे। वैसे आज भी इनके काफी बडे झुड यात्रा करते है।

कैरीबोओ की प्रवास-यात्रा भोजन की तलाश मे इधर-उधर भट कना नही है। वे एक अनुशासित सेना की भाति, सुनिश्चित मार्गो से अपने लक्ष्य की ओर बढते है। इनकी यह यात्रा 1400 किलोमीटर जैसी लम्बी हो सकती है। कैनेडियन वन्य जीवन विभाग के फ्रेज़र सिकिगटन के अनुसार कैरीबो एक नियमित गति, जो 8 से 10 किलो-मीटर प्रति घटे तक होती है, यात्रा करते हैं। तेज हवाये अथवा भीषण हिमपात जैसी घटनाये ही इनकी गति को कम कर पाती है।

सितम्बर मास मे कैरोबो के झुड के झुड दक्षिण की ओर चल पडते हैं। इनमे नर, मादा, बच्चे, बूढे सब शामिल होते है। अक्तूबर मास मे ये उस इलाके मे पहुच जाते है जहा टैगा आरम्भ होते है। टैगा नुकीले पत्तो वाले वृक्षो के वन प्रदेश हैं जो टुड्रा के दक्षिण मे स्थित है।

यहा पहुचने के बाद कैरीबो कुछ दिन के लिए ठहरते है। वे जोडा बनाते है। और फिर दक्षिण की ओर चल पडते है। अब झुडो मे सबसे आगे जवान नर होते है। मादाये और बच्चे झुडो के पिछले हिस्सो मे होते है। टैगा प्रदेश मे इनके झुड आपस मे मिलते जाते है और निरतर बडे होते जाते है। अन्त मे ये घास के मैदानो मे पहुच जाते है। वही ये

सर्दी बिताते हैं।

जब सर्दी समाप्त होने लगती है तब कैरीबो घास के मदानो मे निकलकर फिर झुड बनाने लगते है। इन झुडो मे आमतौर से 100 से लेकर 3000 तक जानवर होते है। अब मादाये और बच्चे झुडो के आगे होते हैं और नर पीछे। ये उत्तर की ओर चल पडते है। इस बार भी ये नियमित गति से, सुनिश्चित मार्गों से यात्रा करते है। आमतौर से इनके मार्ग नदियो के किनारे-किनारे होते है। यदि इनके मार्ग मे कोई नाला अथवा झील आ जाती है तो ये उसे तैर कर पार करते है। ये मई मास मे फिर से टुड्रा प्रदेश मे आ पहुचते है। उस समय यहा बर्फ पिघलने लगती है। घास मे अकुर फूट जाते है और काई, लाइकेन आदि उग आती है।

सुदूर आर्कटिक प्रदेश मे पहुच जाने के बाद कैरीबोओ के झुड बिखर जाते है। सब कैरीबो अलग-अलग हो जाते है। यहा जून मास मे मादा बच्चे जनती है। कुछ समय बाद बच्चे भी माताओ को छोड देते है और स्वतन्त्र रूप से विचरण करने लगते है।

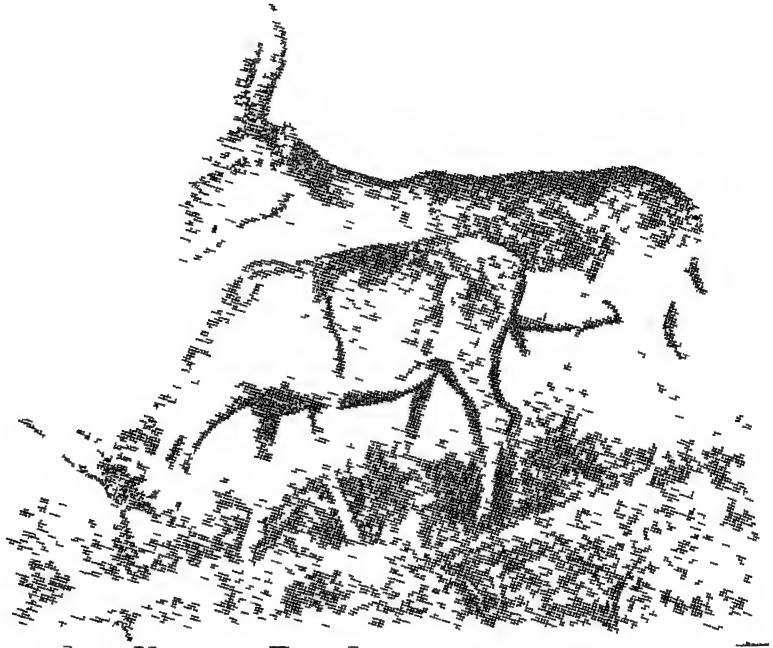
जब सर्दियो के आरम्भ मे कैरीबोओ के झुड दक्षिण की ओर आते है तो भेडिये भी इनके साथ चल पडते है। वे कमजोर, बीमार या पीछे छूट गए कैरीबोओ को अपना शिकार बना लेते है। बच्चे भी इनके शिकार बन जाते है। भेडियो के झुड घास के मैदानो मे भी इनके साथ-साथ रहते है और भूख लगने पर इनका शिकार करते रहते है। पर गर्मियो मे वे टुड्रा प्रदेश मे नही जाते—टैगा प्रदेश मे ही रह जाते है क्योकि गर्मियो मे वे स्वय जोडे बनाते है। इस प्रकार कैरीबोओ के साथ-साथ भेडिये भी एक हद तक, प्रवास-यात्रा करते है।

आर्कटिक प्रदेशो मे रहने वाले भालू भी कैरीबोओ का शिकार करते है। लोमडी जसे जीव मृत कैरीबोओ के शवो को ठिकाने लगाते रहते है।

कुछ लोगो का मत है कि शिकारी जानवरो के कारण ही कैरीबोओ की सख्या कम हो गई है। पर वास्तविकता ऐसी नही है। उनकी सख्या मे कमी मनुष्यो द्वारा उनके अधाधुन्ध शिकार के कारण ही आयी है।

सैगा—रूस मे डान और वोलगा नदियो के बीच के भू-भाग मे घास के बडे-बडे मैदान है। इनमे अक्सर धूल उडती रहती है। ये मैदान

"स्टेप्स" कहलाते है। इनमे ऐसे सुन्दर हिरनो के, जिनकी नाक काफी उभरी हुई होती हे, बडे-बडे झुड देखे जा सकते है। ये हिरन "सैगा" कहलाते है। ये भी प्रवास यात्राये करने है।



सैगा की विशिष्टता है उसकी उभरी हुई झुर्रीदार नाक। नाक का यह उभार स्टेप्स की धूल से उसकी रक्षा करता है।

सैगा की प्रवास यात्रा कैरीबो की भाति अनुशासित नही होती और न ही वह निश्चित समयो पर आरम्भ या समाप्त होती है। वास्तव मे सैगाओ के झुड निरन्तर यात्रा करते रहते है। सैगा हमेशा घास और पानी की तलाश मे घूमते रहते हैं। वैसे सर्दी की भीषणता भी इन्हे यात्रा करने के लिए मजबूत कर देती है।

सर्दियो मे स्टेप्स मे भी हिमपात होते है। इसलिए उस समय सैगाओ को दक्षिण की ओर आना पडता है। जब उन्हे बर्फीले तूफानो और बर्फ की मोटी परतो पर से गुजरना होता है तब वे बडी सख्या मे

हताहत हो जाते है। दक्षिण की ओर यात्रा करने वाले सैगाओ पर भेडियो के झुड भी उसी तरह आक्रमण करते है जसे वे कैरीबोओ पर करते है।

सैगा नवम्बर और दिसम्बर मासो मे जोडा बनाते है। उस समय हर नर सैगा 40-50 मादाओ को लेकर अपना "हरम" बना लेता है। हर नर अपने हरम की रक्षा बहुत सतर्कता से करता है। जब कोई अन्य नर हरम मे प्रवेश करने का प्रयत्न करता है, तब "हरम-स्वामी" उस पर आक्रमण करता है। तब वह उससे लड पडना है। यह लडाई उस समय तक चलती रहनी है जब तक किसी नर की मृत्यु नही हो जाती। जोडा बनाने के मौसम मे नर कुछ नही खाते—केवल वर्फ निगलते है। लम्बे उपवास के कारण वे वहुत कमजोर हो जाने है। फलस्वरूप वे ठडे मौसम के अथवा भेडियो के शिकार बन जाते है। उस कारण कभी-कभी नब्बे प्रतिशत तक नर काल के ग्राम बन जाते है। इसीलिए सैगाओ मे हमेशा मादाओ की सख्या नरो की तुलना मे अधिक होती है।

प्रवास-यात्रा के दौरान सैगा की चाल अक्सर तेज होती है। जवान नर मौका पडने पर 70 से 80 किलोगोटर प्रति घण्टे की दर से दौड सकता है। इसीलिए सैगाओ के झुडो के साथ यात्रा करने वाले भेडिये उन्हे आसानी से अपना शिकार नही बना पाते। वे तो आमतौर से कमजोर नरो, गर्भस्थ मादाओ या बच्चो आदि को ही अपना शिकार बना पाते है।

जैसे ही वसन्त ऋतु आरम्भ होती है सैगा उत्तर की ओर अपनी यात्रा आरम्भ कर देते है। यह यात्रा 300 से 400 किलोमीटर लम्बी होती है। इस समय सैगाओ के झुडो की औसत गति 5 किलोमीटर प्रति घण्टा होती है। इसी समय मादाये बच्चे जनती है। जैसे ही बच्चे चलने लायक होते है, मादाये उन्हे लेकर यात्रा आरम्भ कर देती है।

लाल हिरन—यूरोप के पर्वतो पर लाल रग के हिरन पाए जाते है। गर्मी मे इन्हे मक्खिया तग करती है और सर्दियो मे बर्फ। इसलिए गर्मी मे ये पर्वतो पर और ऊचाई पर चले जाते है और सर्दियो मे निचली घाटियो मे आ जाते है। गर्मियो की यात्रा छोटी होती है पर सर्दी की यात्रा 30 किलोमीटर तक लम्बी हो सकता है। पर्वतो पर से बर्फ पिघल जाने के बाद ये वापस चले जाते हैं।

कभी-कभी सर्दियो मे दिन के समय ये पर्वत पर रहते है पर रात को मैदानो मे आ जाते हैं।

इसी प्रकार शेमॉय हिरन भी सर्दियो मे घाटियो मे उतर आते है पर गर्मिया पर्वतो पर बिताते है।

एडैक्स—एडैक्स अफ्रीका मे रहने वाला एक मजबूत पर बदसूरत हिरन (एन्टीलोप) है जो प्रति वर्ष अपने ग्रीष्म और शीत आवासो के बीच सैकडो किलोमीटर की यात्रा करता है। जहा एडैक्स ग्रीष्म ऋतु बिताता है वहा वर्षा शीत ऋतु मे होती है। एडैक्स शीत ऋतु मे सहारा रेगिस्थान मे आ जाता है। उस समय उसे वहा कही-कही घास मिल जाती है। वह इसे खाकर ही गुजारा करता है। गर्मी आने पर वह दक्षिण की ओर चला जाता है। यहा वह काफी लम्बे समय तक बिना पानी के ही रहा आता है।

ग्नू—धारीदार ग्नू देखने मे सुन्दर जानवर नही होता। अफ्रीका मे विक्टोरिया झील के पूर्व मे स्थित घास के मैदानो मे इनकी सख्या बहुत अधिक है। यह शाकाहारी जानवर है और हरी-भरी घास की खोज मे हर वर्ष लम्बी-लम्बी प्रवास यात्राये करता रहता है। वर्षा ऋतु, जो दिसम्बर से फरवरी माह तक होती है, के दौरान धारीदार ग्नू, विक्टोरिया झील के पास स्थित सेरेन्गेट मैदान के पूर्वी हिस्से मे फैले रहते है क्योकि उस समय यह भाग बहुत हरा-भरा रहता है। इस क्षेत्र मे कुछ ही नदी-नाले है और बरसात के बाद वे सूख जाते है। इसलिए इस क्षेत्र की घास आदि भी सूख जाती है। इस समय ग्नू उन कुछ मैदानो मे इकट्ठे होने लगते है जहा अब भी घास हरी होती है। धीरे-धीरे इन मैदानो मे इनके बडे-बडे झुड बन जाते है। कुछ समय बाद, जब यहा भी हरी घास खत्म होने लगती है तब ये झुड पश्चिम की ओर चल पडते है।

ये अपनी प्रवास-यात्रा आरम्भ करते ही है कि इनका जोडा बनाने का मौसम शुरू हो जाता है। इस समय नर अपने क्षेत्र घेरकर उसमे मादाओ को लुभाने लगते है। इस तरह ये अपने हरम बना लेते है और यथाशक्ति इनकी रक्षा करते है। इस समय अक्सर ही नर ग्नूओ की आपस मे लडाई होती रहती है। वैसे ये हरम बहुत दिनो तक कायम नही रह पाते क्योकि यहा भी हरी 'घास' जल्दी ही समाप्त हो जाती है और उसकी तलाश मे ग्नुओ के झुडो को अपनी यात्रा पुन आरम्भ

करनी पडती है। यात्रा शुरू होते ही हरम टूट जाते है और मादाये फिर से समूहो मे मिल जानी है।

अक्सर ही ग्नू के समूह गर्मिया नदियो के किनारे बिताते ह क्योकि उस समय हरी घास वही मिलती है। वर्षा आरम्भ होते ही ये समूह वापिस अपने मूल क्षेत्र मे आ जाते है। उस समय मादाये बच्चे जनती हे। जब तक वर्षा समाप्त होती है तब तक शिशु अपनी मा का दूध पीना छोड चुके होते है। वर्षा ऋतु मे ग्नू पर्याप्त मात्रा मे भोजन आदि मिलते रहने से काफी हृष्ट-पुष्ट हो जाते है।

जिस वर्ष वर्षा देर से होती है अथवा बहुत कम होती है, उस वर्ष इनकी यात्रा जारी ही रहती है। हरी घास की तलाश मे ये यात्रा करते ही रहते ह।

इन यात्राओ के दौरान इनकी गति लगभग 12 किलोमीटर प्रति-दिन होती है। वैसे इनके दौरान शिशु मृत्यु की दर बहुत अधिक होती है। कभी-कभी अस्सी प्रतिशत तक बच्चे सिहो के हमलो, अन्य जगली जानवरो के आक्रमणो तथा यात्राओ की कठिनाइयो के फलस्वरूप काल के ग्रास बन जाते हे।

बारहसीगा—अपने देश मे पाए जाने वाला बारहसीगा भी प्रवास-यात्रा करता हे। यहा इसकी दो प्रजातिया—**सिरबस डुवासिली डुवसिली और सिरबस डुवासिली बरान्डरी**—मिलती ह। दुधवा राष्ट्रीय उद्यान लखीमपुर-खीरी (उत्तर प्रदेश) मे बारहसीगे, वर्षा ऋतु मे, प्रजनन के लिए, उद्यान से बाहर आ जाते हे। ये आसपास के गन्ने के खेतो आदि मे फैल जाते है। बरसात मे उद्यान मे पानी भरने के कारण भी वे ऐसा करते हे। यहा से ये फरवरी मास मे, जब उद्यान मे निचले स्थानो पर भरा पानी सूख जाता है, लौटते हैं।

मध्य प्रदेश के कान्हा राष्ट्रीय पार्क मे भी ऐसा होता है। वहा बारहसीगे वर्षा ऋतु मे ऊचे स्थानो पर चले जाते है। यद्यपि ये स्थान 10-12 किलोमीटर दूर होते है पर यहा इन्हे न केवल जमीन पर भरे पानी से छुटकारा मिल जाता है वरन् हरी-भरी घास और प्रजनन के लिए सुरक्षा भी मिलती हे। प्रजनन के बाद ये वापस लौट आते ह। ऐसा हर वर्ष होता है।

कभी-कभी सर्दियो मे दिन के समय ये पर्वत पर रहते है पर रात को मैदानो मे आ जाते हैं।

इसी प्रकार शेमॉय हिरन भी सर्दियो मे घाटियो मे उतर आते है पर गर्मिया पर्वतो पर विताते है।

एडैक्स—एडैक्स अफ्रीका मे रहने वाला एक मजबूत पर बदसूरत हिरन (एन्टीलोप) है जो प्रति वर्ष अपने ग्रीष्म और शीत आवासो के बीच सैकडो किलोमीटर की यात्रा करता है। जहा एडैक्स ग्रीष्म ऋतु विताता है वहा वर्षा शीत ऋतु मे होती है। एडैक्स शीत ऋतु मे सहारा रेगिस्थान मे आ जाता है। उस समय उसे वहा कही-कही घास मिल जाती है। वह इसे खाकर ही गुजारा करता है। गर्मी आने पर वह दक्षिण की ओर चला जाता है। यहा वह काफी लम्बे समय तक बिना पानी के ही रहा आता है।

ग्नू—धारीदार ग्नू देखने मे सुन्दर जानवर नही होता। अफ्रीका मे विक्टोरिया झील के पूर्व मे स्थित घास के मैदानो मे इनकी सख्या बहुत अधिक है। यह शाकाहारी जानवर है और हरी-भरी घास की खोज मे हर वर्ष लम्बी-लम्बी प्रवास यात्राये करता रहता है। वर्षा ऋतु, जो दिसम्बर से फरवरी माह तक होती है, के दौरान धारीदार ग्नू, विक्टोरिया झील के पास स्थित सेरेन्गेट मैदान के पूर्वी हिस्से मे फैले रहते है क्योकि उस समय यह भाग बहुत हरा-भरा रहता है। इस क्षेत्र मे कुछ ही नदी-नाले है और बरसात के बाद वे सूख जाते है। इसलिए इस क्षेत्र की घास आदि भी सूख जाती है। इस समय ग्नू उन कुछ मैदानो मे इकट्ठे होने लगते है जहा अब भी घास हरी होती है। धीरे धीरे इन मैदानो मे इनके बडे-बडे झुड बन जाते है। कुछ समय बाद, जब यहा भी हरी घास खत्म होने लगती है तब ये झुड पश्चिम की ओर चल पडते है।

ये अपनी प्रवास-यात्रा आरम्भ करते ही है कि इनका जोडा बनाने का मौसम शुरू हो जाता है। इस समय नर अपने क्षेत्र घेरकर उसमे मादाओ को लुभाने लगते है। इस तरह ये अपने हरम बना लेते है और यथाशक्ति इनकी रक्षा करते है। इस समय अक्सर ही नर ग्नूओ की आपस मे लडाई होती रहती है। वैसे ये हरम बहुत दिनो तक कायम नही रह पाते क्योकि यहा भी हरी 'घास' जल्दी ही समाप्त हो जाती है और उसकी तलाश मे ग्नुओ के झुडो को अपनी यात्रा पुन आरम्भ

करनी पडती है। यात्रा शुरू होते ही हरम टूट जाते है और मादाय फिर से समूहो मे मिल जाती है।

अक्सर ही ग्नू के समूह गर्मिया नदियो के किनारे बिताते है क्योकि उस समय हरी घास वही मिलती है। वर्षा आरम्भ होते ही ये समूह वापिस अपने मूल क्षेत्र मे आ जाते है। उस समय मादाये बच्चे जनती है। जब तक वर्षा समाप्त होती है तब तक शिशु अपनी मा का दूध पीना छोड चुके होते है। वर्षा ऋतु मे ग्नू पर्याप्त मात्रा मे भोजन आदि मिलते रहने से काफी हृष्ट-पुष्ट हो जाते है।

जिस वर्ष वर्षा देर से होती है अथवा बहुत कम होती है, उस वर्ष इनकी यात्रा जारी ही रहती है। हरी घास की तलाश मे ये यात्रा करते ही रहते है।

इन यात्राओ के दौरान इनकी गति लगभग 12 किलोमीटर प्रति-दिन होती है। वैसे इनके दौरान शिशु मृत्यु की दर बहुत अधिक होती है। कभी-कभी अस्सी प्रतिशत तक बच्चे सिहो के हमलो, अन्य जगली जानवरो के आक्रमणो तथा यात्राओ की कठिनाइयो के फलस्वरूप काल के ग्रास बन जाते है।

बारहसीगा—अपने देश मे पाए जाने वाला बारहसीगा भी प्रवास-यात्रा करता है। यहा इसकी दो प्रजातिया—**सिरवस डुवासिली डुवसिली और सिरवस डुवासिली बरान्डरी**—मिलती है। दुधवा राष्ट्रीय उद्यान लखीमपुर-खीरी (उत्तर प्रदेश) मे बारहसीगे, वर्षा ऋतु मे, प्रजनन के लिए, उद्यान से बाहर आ जाते है। ये आसपास के गन्ने के खेतो आदि मे फैल जाते है। बरसात मे उद्यान मे पानी भरने के कारण भी वे ऐसा करते है। यहा से ये फरवरी मास मे, जब उद्यान मे निचले स्थानो पर भरा पानी सूख जाता है, लौटते है।

मध्य प्रदेश के कान्हा राष्ट्रीय पार्क मे भी ऐसा होता है। वहा बारहसीगे वर्षा ऋतु मे ऊचे स्थानो पर चले जाते है। यद्यपि ये स्थान 10-12 किलोमीटर दूर होते है पर यहा इन्हे न केवल जमीन पर भरे पानी से छुटकारा मिल जाता है वरन् हरी भरी घास और प्रजनन के लिए सुरक्षा भी मिलती है। प्रजनन के बाद ये वापस लौट आते है। ऐसा हर वर्ष होता है।

जगली भैसे

एक समय था जब भैसे जगल मे रहते थे। उन्हे आदमी ने पालना शुरू किया। वे पालतू बन गए। पर उनके कुछ भाई-बहन जगल मे ही रह गए और बहुत खूखार बन गए। ये ही है जगली भैसे। जगली भैसे हमारे देश मे ही नही अन्य देशो मे भी पाए जाते है, बल्कि वहा अधिक सख्या मे पाए जाते है। आज से करीब 150 वर्ष पहले उत्तर अमेरिका मे जगली भैसो का राज था। उस समय वर्तमान कनाडा और सयुक्त राज्य अमेरिका के अधिकाश इलाको मे वे आजादी से विचरण करते थे। तब गर्मी के दिनो मे वे सयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिण और मध्य भागो से उत्तर की ओर चल पडते थे। वे बहुत विशाल समूहो मे चलते थे। कनाडा के दक्षिणी भाग मे गर्मी बिताने के बाद, सर्दियो के आरभ मे, उनकी दक्षिण-दिशा की यात्रा आरम्भ होती थी।

अन्धाधुन्ध शिकार के कारण इन भैसो की सख्या बहुत कम हो गई है। साथ ही अब इनके प्रवास-यात्रा-मार्गो मे तथा उन स्थलो पर जहा वे सर्दियो मे चले जाते थे, अनेक इमारते, कारखाने आदि बन गए। इसलिए अब ये प्रवास-यात्राओ पर नही निकलते। अब ये अपने अभयारणो मे ही रहे आते है। इनमे ही अपनी प्रवास यात्रायें करते है।

हमारे देश के अनेक भागो मे जगली भैसो को गौर भी कहते है। आजकल इनके सरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यान बना दिए गए है। बन्दीपुर (कर्नाटक) और पालमू (बिहार), मैगपाल (उडीसा) के राष्ट्रीय उद्यानो मे इनकी प्रवास-यात्राओ के बारे मे अध्ययन किए गए हैं।

गर्मी के आरम्भ मे ही मार्च के महीने मे मैगपाल मे पानी की कमी हो जाती है। इसलिए गौर वहा से बामनी के जगलो मे चले जाते है। बामनी लगभग 25 किलोमीटर दूर है। जब जुलाई माह मे वर्षा होने लगती है तो ये वापस मैगपाल आ जाते है और वहा फरवरी माह तक रहे आते है।

बन्दीपुर और पालमू राष्ट्रीय उद्यानो के गौर हर वर्ष वर्षा के चार महीनो के लिए ऊचे स्थानो पर चले जाते है। वर्ष के शेष आठ महीने वे समतल मैदानो मे गुजारते हैं।

रेगाकोल (उडीसा) के जगलो मे यह क्रम उल्टा होता है, वहा गौर

वर्ष के नौ माह (जुलाई से मार्च तक) पहाडो पर गुजारते है। केवल तीन महीने के लिए वे समतल मैदानो मे रहते हैं।

सफेद भालू

आपने मदारी को भालू नचाते देखा होगा। यह भालू काले रग का होता है। पर एक प्रजाति के भालू एकदम सफेद रग के भी होते हैं। ये भालू 'आर्कटिक' प्रदेश मे पाए जाते हैं और सील, समुद्री पक्षियो और मछलियो के अतिरिक्त घास और काई भी खाते है। इन सबकी तलाश मे वे मुख्य भूमि, द्वीपो और बर्फ की तरती चट्टानो के बीच भटकते रहते है। वे किसी एक जगह टिक कर नही रहते। अपने इस भटकने के दौरान वे उत्तर ध्रुव का पूरा चक्कर ही काट जाते है।

गिलहरी

आमतौर से यह समझा जाता है कि गिलहरी अपना पूरा जीवन पेडो पर चढते उतरते ही बिता देती है और वह अपने इलाके के पेडो पर ही रही आती है। साधारणतया उसे प्रवास करने वाले जीव नही समझा जाता। परन्तु उत्तरी नुकीले पत्तो वाले वृक्षो के ठडे प्रदेशो मे गिलहरियो को प्रवास-यात्रा पर जाना पडता है। फिनलैंड मे ऐसे प्रदेश है। गिलहरियो की प्रवास-यात्रा का मुख्य कारण है भोजन की तलाश।

उस वर्ष जब स्प्रूस की फसल नही होती अथवा कम होती है, गिल-हरिया चीड के वनो मे चली जाती हैं।

फिनलैंड मे जिस वर्ष कोन की पैदावार अच्छी होती है उस वर्ष लाल गिलहरियो की आबादी बहुत बढ जाती है। पर अगले वर्ष आम-तौर से खाने वाले मुखो की सख्या बढ जाती है पर भोजन की मात्रा नही बढती। इसलिए गिलहरियो को अन्य क्षेत्रो मे जाना पड जाता है। वैसे नए वन प्रदेशो मे पहली बार गिलहरियो को पर्याप्त भोजन मिल जाता है। इसलिए वहा भी उनकी आबादी बढ जाती है।

अब से लगभग 150 वर्ष पहले, जब सयुक्त राज्य अमेरिका के बडे भू-भाग मे जगल थे, तब धूसर रग की गिलहरियो के बडे-बडे झुड प्रवास-यात्रा पर निकलते थे। अपनी यात्रा के दौरान वे जगलो मे से गुजरती, नदी-नालो और झीलो को तैरकर पार करती और रास्ते मे

जो फसल मिलती उसे चट कर जाती थी। वैसे आज भी जब अधिकाश जगल साफ हो गए है ये गिलहरिया प्रवास यात्रा पर निकलती है पर अब इनके झुड बहुत छोटे होते है।

लेमिग

वैज्ञानिक लेमिग की यात्रा को प्रवास-यात्रा नही मानते। पर वह है बहुत विलक्षण। इसलिए उसकी भी कुछ चर्चा कर ले।

लेमिग चूहे जैसा एक स्तनधारी जीव है। उसकी बारह प्रजातिया होती है। परन्तु उस प्रजाति के लेमिगो की, जो नार्वे और उसके पडोसी देशो स्वीडन तथा फिनलैंड मे पाए जाते है यात्रा सबसे विचित्र होती है।

नार्वेजियन लेमिग हर तीन-चार वर्ष बाद एक दिन, अचानक ही, बहुत बडी सख्या मे, सागर की ओर चल पडते है। नदी-नालो, खाइयो, पहाडियो और सडको आदि को, बिना रुके पार करते हुए, ये समुद्र तट पर जा पहुचते है। वहा भी वे रुकते नही है वरन् बढते ही जाते है और अत मे सागर मे डूब जाते है।

इस यात्रा से पहले 3-4 वर्षो तक लेमिग की जनसख्या बहुत तेजी से बढती रहती है। फिर अचानक ही यह सामूहिक 'आत्महत्या' काड होता है जिससे जनसख्या घट कर न्यूनतम रह जाती है। जनसख्या बढने और घटने का क्रम काफी अनियमित है। नार्वेजियन लेमिग एक वर्ष मे कई दर्जन बच्चे पैदा कर लेता है। ऐसा उस वर्ष विशेष रूप से होता है जिस वर्ष ठड कम पडती है और खाने के लिए सामग्री पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होती है। उस समय वसत और शरद ऋतु मे भी लेमिग की आबादी बहुत तेजी से बढती है। इससे धीरे धीरे ऐसी स्थिति आ जाती है कि जिन बिलो मे 8-9 लेमिग रह सकते है उनमे 24 25 से भी अधिक लेमिग हो जाते है। वे आसपास की सब खाद्य वस्तुओ को खाकर समाप्त कर देते है और फिर एकाएक रात के समय अपने बिलो से निकल पडते है। वे इतनी बडी सख्या मे निकलते है कि रात मे भी इनके झुडो को देखा जा सकता है। ऐसा ही आज से लगभग 20 वर्ष पूर्व, 9 अक्तूबर 1970, को हुआ था। उस दिन लेमिगो का इतना बडा झुड रेल की पटरियो पर से गुजरा था कि रेलगाडियो को भी रुकना पडा था।

वैज्ञानिको को अपने अध्ययनो मे एक बात का पता चला है कि जब बहुत से लेमिगो को एक सीमित जगह मे बद कर दिया जाता है तो वे उसी प्रकार व्यवहार करते है जैसे मनुष्य किसी भीषण अग्नि काड या भूकम्प के दौरान करते है। उनमे बहुत अधिक तनाव पैदा हो जाता है और उसके फलस्वरूप वे हर तरफ बिना सोचे-समझे भागने लगते हैं। लेमिग अच्छे तैराक होते है और वे नदी-नालो को आसानी से पार कर सकते है। तनाव की स्थिति मे वे बडी नदियो को अथवा सागर को भी पार करना चाहते हे और डूब कर मर जाते है। इसी तनाव के कारण वे आत्महत्या कर लेते हैं। इस सामूहिक आत्महत्या मे लगभग सब लेमिग मर जाते है, केवल वे ही बचते हे जो भगदड मे भाग नही लेते। बाद मे इन्ही से इनकी जनसख्या बढती है।

उडने वाला स्तनधारी चमगादड

केवल चमगादड ही ऐसा स्तनधारी है जो उड सकता है। उडने वाली गिलहरी हवा मे तैरती है उडती नही। चमगादड के पख दर-असल उनके हाथो और पैरो की अगुलियो की बीच की झिल्ली है फिर भी वह पक्षियो की भाति लम्बी उडाने भर सकती है।

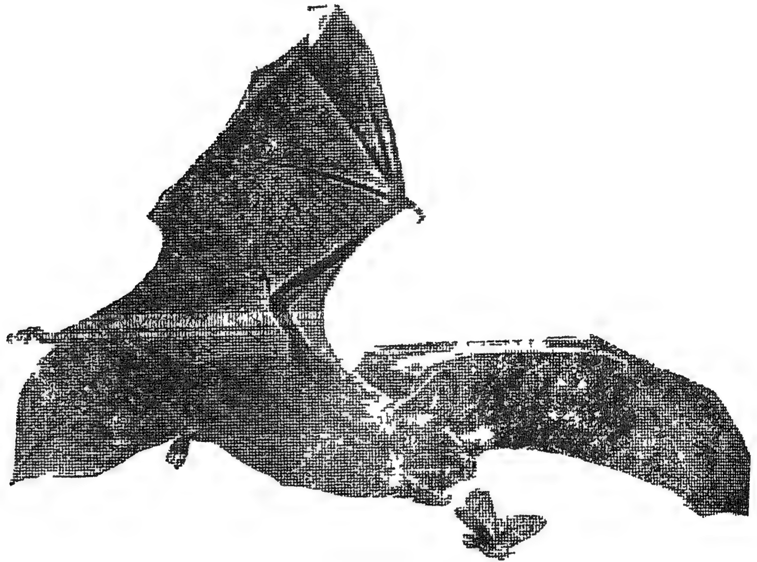
चमगादड की लगभग 800 जातिया होती है। उनमे से अनेक जातिया प्रवास-यात्राये करती हे। उनकी यात्राओ का उद्देश्य भी ऐसे स्थानो की खोज होती है जहा उन्हे बेहतर मौसम और भोजन मिल सके तथा सर्दियो के दिनो मे वे बिना किसी बाधा के 'शीत निद्रा' ले सके। शीत निद्रा लेने के लिए जीव जन्तुओ को उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता होती है।

चमगादडो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे जानकारी इकट्ठा करना कठिन काय है क्योकि वे अक्सर प्रात या सध्या के धुधले मे यात्रा करती है। साथ ही वे एक साथ, बडी सख्या मे प्रवास यात्राये नही करती।

कीडे खाने वाली तथा लाल, कत्थई और बाल वाली चमगादडे, जो कनाडा और सयुक्त राज्य अमेरिका मे पायी जाती हे, सर्दियो के आरम्भ मे दक्षिण की ओर चल पडती है। उनमे से अनेक अध महासागर पार करके लगभग 900 कि०मी० दूर बरमूदा तक जा पहुचती है। यहा वे सर्दी बिताती है पर गर्मी आरम्भ होते ही उत्तर की ओर उड जाती

है। इनकी प्रवास-यात्रा का मुख्य कारण है सर्दियो मे उन कीडो की बडी सख्या मे मृत्यु जिन्हे वे खाती है। दक्षिण के अपेक्षाकृत गर्म मौसम मे ये कीडे सर्दी मे भी जीवित रहे आते है।

फल खाने वाली चमगादडो की प्रवास-यात्राओ का सम्बन्ध फलो के पकने से होता है। वे लगभग पूरे ससार मे उष्ण कटिबध मे पायी जाती है।



चूहे के सदश कान वाली चमगादड यह यूरोप की सबसे बडी चमगादड है जो सर्दी के दिना मे पश्चिमी यूरोप से एटलस पवत की गुफाओ मे (मरक्को) आ जाती है।

यूरोप मे पायी जाने वाली चूहे के सदृश कान वाली चमगादड सर्दिया बिताने अफ्रीका के उत्तरी भाग मे चली जाती हे। सर्दियो के शुरू मे एक दिन शाम को वे भूमध्यसागर के दक्षिण तट की ओर उड जाती है। वे बडे-बडे झुडो मे उडती है। फ्रास के दक्षिण-पश्चिमी भाग से उडने वाली चमगादडो को पिरेनीज़ पर्वत पार करना होता है। समझा जाता है कि कोई वृद्ध 'अनुभवी' चमगादड के नेतृत्व मे झुड पिरेनीज पर्वत पार करता है। फिर भी काफी चमगादड हताहत हो जातो है।

इन चमगादडो के कुछ निश्चित 'विश्राम स्थल' भी हैं जहा यात्रा के दौरान वे कुछ समय के लिए ठहरती हैं और फिर आगे बढती है। ऐसे विश्राम स्थल पिरेनीज़ पर्वत पर गुफाओ मे, स्पेन के दक्षिणी तट पर, रॉक ऑफ जिब्राल्टर पर और मरक्को के दक्षिणी तट पर स्थित हे। इन विश्राम स्थलो पर रुकती हुई वे एटलस पवतो की गुफाओ मे पहुचती हैं जहा वे शीत निद्रा लेती है।

यद्यपि अपनी प्रवास यात्रा के पूव हो ये चमगादड जोडा वना चुकी होती है पर प्रकृनि के विलक्षण नियम के फलस्वरूप नर शुक्राणु उस समय तक सुप्त अवस्था मे रहे आते है जब तक मादा चमगादड शीत निद्रा से जग नही जाती। उस समय शुक्राणु अडाणुओ को निप्रेषित कर देते हे। गर्मी मे वापसी प्रवास यात्रा के बाद मादा दो या तीन बच्चो को जन्म देती है।

आस्ट्रेलिया की धूसर रग के सिर वाली चमगादड के बारे मे गहन अध्ययन किए गए हे। यह फल खाती है। जब अक्तूबर मे आस्ट्रेलिया मे वसत ऋतु होती हे ता यह चमगादड क्वीसलैड और न्यू साउथ वेल्स से दक्षिण की ओर चल पडती है। ऐसा करते समय अधिकाश चमगादडे ग्रेट डिवाइडिग रेज के पूव स तटीय मैदान पर से, उडान भरती है। ये आमतौर से झुडो मे उडती हे। प्रत्येक झुड मे 100 या उससे अधिक चमगादडे होती हे। हर वष रास्ते मे ये खास कैम्पो मे रुकती है। कुछ समय रुकने के बाद ये पुन अपनी दक्षिण दिशा की यात्रा आरम्भ कर देती है। तीन महीने के अन्दर ये चमगादडे 1600 किलोमीटर की यात्रा कर लेती हे।

सर्दी शुरू होने पर ये पुन क्वीसलैड और न्यू साउथ वेल्स वापस आ जाती है।

भारत मे भी हिमालय की तलहटी मे रहने वाली चमगादडे, सर्दी ऋतु आरम्भ होते ही दक्षिण की ओर चल पडती है। सर्दियो मे इनके मूल निवास क्षेत्र मे भोजन (कीडो) की कमी हो जाती है। अपेक्षाकृत गम स्थानो पर सर्दी बिताने के बाद गर्मी आरम्भ हाते ही, ये वापस लौट आती हे।

जलचर स्तनधारी

जल मे रहने वाले स्तनधारी भी बडा लम्बी-लम्बी प्रवास यात्राये

करते है। विचित्र बात यह है कि उनमे से कुछ अपनी प्रवास यात्रा का कुछ भाग थल पर बिताते है। सील और समुद्री सिह जैसे जीव थल अथवा उथले तटीय जल मे प्रजनन करते है जबकि ह्वेल, डालफिन और पारपायज अपना पूरा जीवन सागर मे ही बिताते है। उनका प्रजनन भी वही होता है।

जलचर स्तनधारियो मे कदाचित् सबसे अधिक चर्चित है ह्वेल। वह सबसे अधिक विलक्षण जन्तु भी है। इसलिए उसकी प्रवास यात्रा से ही अपनी बात जारी रखे।

ह्वेल

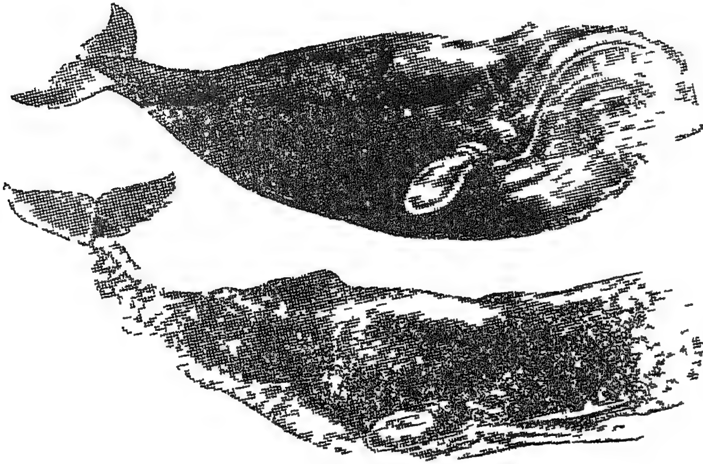
ह्वेल ससार का सबसे बडा जन्तु है। मछलियो की भाति वह भी बिना पानी के जीवित नही रह सकती पर वह मछली नही है। वह स्तनधारी जन्तु है जिसकी मादा बच्चे जनती है, अडे नही। उसके फेफडे होते है, गलफडे नही। इसलिए उसे सास लेने के लिए पानी की सतह से ऊपर, हवा मे आना पडता है। अब तक पृथ्वी पर जितने भी जीवो का विकास हुआ है उनमे नीली ह्वेल सबसे बडी है। नीली ह्वेल 30 मीटर से भी अधिक लम्बी हो जाती है। एक नीली ह्वेल 170 टन तक भारी हो जाती है। अगर हाथी से तुलना करे तो एक नीली ह्वेल वजन मे 60 हाथियो के बराबर होता है। वास्तव मे वह इतनी भारी होती है कि उसे स्वय अपने वजन को खीचना भी मुश्किल पडता है। इसीलिए आज से करोडो वर्ष पहले, वह जल मे निवास करने चली गई। धीरे-धीरे वह जलचर ही बन गई।

ह्वेल की प्रवास-यात्राये बहुत लम्बी होती है। हम्पबैक (कूबड वाली) ह्वेल 6,000 किलोमीटर जैसी लम्बी प्रवास यात्रा करती है।

ह्वेल मुख्यत दो जातियो की होती है बलीन ह्वेल और दातो वाला ह्वेल। यद्यपि भ्रूण अवस्था मे दोनो जातियो की ह्वेल मे दात उगने शुरू होते है पर बलीन ह्वेल मे वे विकसित नही हो पाते। बलीन ह्वेलो मे कूबड वाली (हम्पबैक) ह्वेल, धूसर ग्रे ह्वेल और नीली ह्वेल शामिल है। दातो वाली ह्वेलो मे स्पर्म ह्वेल, नरवाल किलर ह्वेल, तथा परपायज और डालफिन शामिल है।

बलीन ह्वेल के मुह मे छन्ने जैसा एक अग होता है। वह सागर के पानी को मुह मे भर लेती है और उसे छन्ने मे से गुजारती है। इससे

प्लाक्टन जैसे छोटे जीव भी मुह मे रह जाते हैं और पानी बाहर निकल जाता है। दरअसल ये जीव ही इनके भोजन है। प्लाक्टनो मे मछलियो के लार्वे, क्रिन झींगे और सूक्ष्म पौधे भी शामिल होते हैं। प्लाक्टन आमतौर से ध्रुवीय प्रदेशो के सागरो मे अधिक पाये जाते हैं। गर्मी के दिनो मे आर्कटिक और अटार्कटिक महासागरो मे दिन का प्रकाश



(ऊपर) कूबड वाली व्हेल, (नीचे) स्पम व्हेल।

अधिक देर तक रहता है और पानी का ताप अपेक्षाकृत नीचा होता है। वहा पानी की उथल-पुथल भी ज्यादा होती है। इसलिए वहा प्लाक्टन बहुत अधिक मात्रा मे पैदा होते है। बलीन ह्वेल भी गर्मी के दिनो मे आर्कटिक या अटार्कटिक सागरो मे चली जाती है। शीत ऋतु आने पर वहा प्लाक्टनो की पैदावार बहुत कम हो जाती है। अतएव ह्वेलो को भी अपेक्षाकृत गर्म सागरो मे आना पडता है। यही वे प्रजनन करती हैं। वे एक समय मे एक ही बच्चा जनती है।

इन ह्वेलो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे सबसे पहले इनका शिकार करने वाले लोगो ने ही जानकारी दी थी। उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे जब वे ह्वेल जिनके शरीरो मे अमेरिकी हारपून घुसे हुए थे नार्वे के उत्तरी तट पर पकडी गईं तो वैज्ञानिको को ह्वेल की लम्बी प्रवास-यात्राओ का आभास हुआ। ये ह्वेले अध महासागर पार करके आयी

थी। बाद मे वैज्ञानिको ने इन यात्राओ के बारे मे अध्ययन किए। उन्होने ह्वेलो के शरीर पर चिपटे हुए परजीवियो का अध्ययन किया और मरी हुई ह्वेलो के पेट चीर कर यह पता लगाया कि गर्म समुद्रो मे पाए जाने वाली ह्वेल ठडे सागरो से आयी थी क्योकि इनके पेट मे ऐसे जीवो के अवशेष मिले थे जो केवल ठडे सागरो मे ही रहते हैं। इन निष्कर्षो की पुष्टि बाद मे ह्वेलो के शरीर मे छल्ले आदि फसाकर किए गए प्रयोगो से भी हुई।

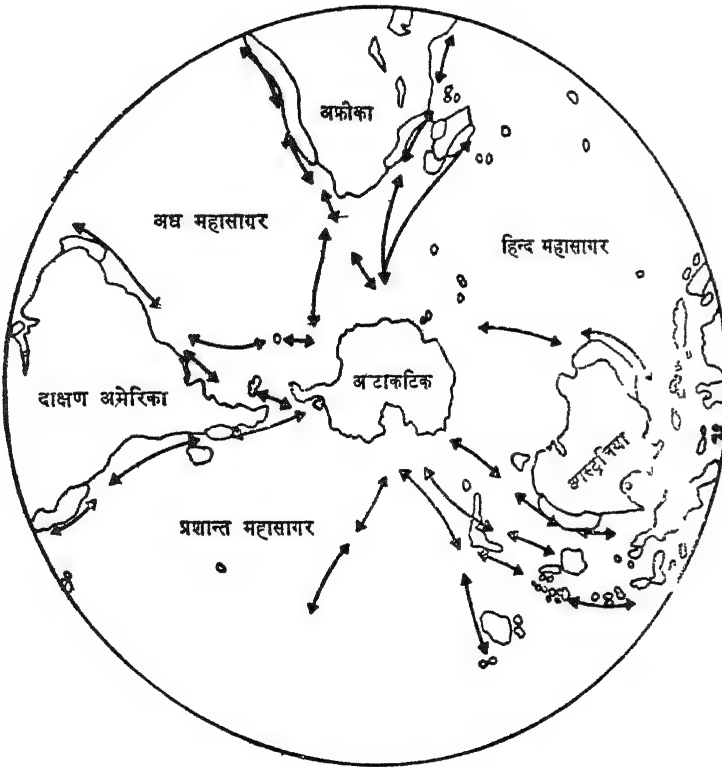
यहा यह बताना असगत न होगा कि पहले ह्वेलो के शरीर मे ताबे के हुक फसाए जाते थे। वे या तो निकल जाते थे अथवा ह्वेल के शरीर को सक्रमित कर देते थे। बाद मे स्टेनलैस इस्पात की नलियो का उपयोग किया जाने लगा। आज भी ये नलिया इस्तेमाल की जाती है। इन नलियो पर आवश्यक सूचनाये खुदी होती है और इन्हे हारपून की मदद से ह्वेल की पीठ की मासपेशियो मे भली-भानि घुसा दिया जाता है। यद्यपि बाद मे इनमे से केवल सात प्रतिशत नलिया ही पुन प्राप्त हो पायी हैं परन्तु इनसे ह्वेलो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है।

अब हमे मालूम है कि दक्षिणी गोलाध मे कूबड वाली ह्वेल नियमित रूप से 40^0 दक्षिण अक्षाश पार करती रहती है। नवम्बर मास मे दक्षिणी सागरो मे वे अलग-अलग झुडो मे अथवा अलग उपनिवेशो मे, कुछ निश्चित मार्गो से, दक्षिण की ओर बढती हुई अटाकटिक महासागर मे पहुच जाती है। दिसम्बर से फरवरी तक यहा प्लाक्टनो की बहुतायत होती है। इसलिए वे मजे स रहती है। पर सर्दी शुरू होते ही वे उत्तर की ओर चल पडती है। उस समय अटार्कटिक महासागर मे भयकर तूफान आने लगते है। साथ ही प्लाक्टनो की आबादी बहुत घट जाती है। अब ये 40^0 दक्षिण अक्षाश पार करती हुई गर्म पानी मे आ जाती है।

ये जब तक गर्म पानी मे रहती है कुछ नही खाती। इस समय वे उस फालतू चर्बी को खर्च करती रहती है जो उन्होने अटार्कटिक महासागर मे जमा की थी। पूर्वी आस्ट्रेलियो के ह्वेल केन्द्रो मे पकडी गई 2000 कूबड वाली ह्वेलो मे से केवल एक के ही पेट मे भोजन मिला था।

ये ह्वेल इसी गर्म पानी मे ही बच्चे जनती है।

उत्तरी गोलार्ध मे अन्य किस्मो की कूबड वाली ह्वेल रहती है। ये गर्मी मे उत्तर मे आर्कटिक सागर मे चली जाती है और सर्दी मे उष्ण कटिबधीय सागरो मे आ जाती हैं। उत्तरी गोलाध मे सर्दी दिसम्बर, जनवरी, फरवरी मे पडती है। इस प्रकार यद्यपि दक्षिणी और उत्तरी दोनो गोलार्धो की ह्वेले सर्दिया उष्ण कटिबध मे बिताती है पर अलग-अलग समय पर—कभी एक साथ नही।



कूबड वाली (हम्प बैंक) व्हेल की प्रवास यात्राओ के माग

कूबड वाली ह्वेल की गर्भावधि एक वर्ष होती है। अध्ययनो मे पाया गया है कि मादा ह्वेल हर दूसरे वष बच्चे जनती हैं इसलिए बच्चा जनने के बाद मादा अगले वर्ष तक जोडा नही बनाती।

दातो वाली ह्वेल मछलिया, स्क्विड आदि जन्तुओ को भी खा

जाती है। इनमे स्पर्म ह्वेल अधिक प्रसिद्ध है। स्पम ह्वेल की प्रसिद्धि का कारण है इसका तेल और अम्बरग्रीस नामक पदार्थ। उन्नीसवी शताब्दी तक स्पर्म ह्वेल का तेल, जो उसके वर्गाकार सिर मे भरा होता है, शृगार प्रसाधनो, दवाइयो और मोमबत्तियो के निर्माण मे इस्तेमाल किया जाता था। अम्बरग्रीस धूसर या काले रग का ग्रीस जैसा पर वहुत अविक सुगधित पदार्थ होता है। इसकी सुगध कस्तूरी से भी तेज होती है। इसकी कीमत भी कस्तूरी से कही ज्यादा होती है। आमतौर से यह सुगधिया बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।

स्पर्म ह्वेल इतनी लम्बी और भारी नही होती जितनी बलीन ह्वेले। यद्यपि यह लगभग हर सागर मे पायी जाती है पर शीतोष्ण और गर्म सागरो मे ५०° उत्तर से 50° दक्षिण अक्षाशो के बीच इसकी सख्या अधिक है। इसका नर मादा से लगभग दुगना बडा होता है। स्पर्म ह्वेल झुडो मे रहती है और प्रवास-यात्रा भी झुडो मे ही करती है।

सर्दी की ऋतु मे स्पर्म ह्वेल गर्म सागरो मे रहती है पर गर्मियो मे शीतोष्ण सागरो मे चली जाती है। सर्दियो मे वह फिर से गर्म सागरो मे लौट आती है। इसकी प्रवास-यात्रा के मार्ग निश्चित है। एक ऐसा मार्ग प्रशात महासागर से केप आफ गुड होप के नीचे से होता हुआ उत्तर अध महासागर मे चला जाता है। स्पर्म ह्वेल की प्रवास-यात्रा का मुख्य उद्देश्य प्रजनन के लिए उपयुक्त स्थल की और अपने मनपसद भोजन, स्क्विड, की तलाश है। सर्दियो मे स्क्विड गर्म सागरो मे पाये जाते है और गर्मियो मे शीतोष्ण सागरो मे। कुछ वृद्ध नर प्रवास यात्राओ के दौरान ध्रुव प्रदेशो मे भी चले जाते है और कभी-कभी सर्दिया भी वही बिता देते है।

सील

सागर मे रहने वाला एक अन्य स्तनधारी प्राणी, सील, भी लम्बी प्रवास-यात्रा करती हैं। सील मुख्यत पानी मे रहती है पर वह थल पर भी रह सकती है। दरअसल वह थल पर ही बच्चे जनती है।

सील कई किस्मो की होती है—अलास्कन फर सील, कास्पियन सील, ग्रे सील, हाप सील आदि। इनमे से अलास्कन फर सील सबसे बडी होती है और उसकी प्रवास-यात्राये भी सबसे बडी होती है।

अलास्कन फर सील का नर ढाई मीटर तक लम्बा होता है और 300

कि० ग्रा० तक भारी हो जाता है। मादा कद और वजन मे काफी छोटी होती है। इस सील की प्रवास-यात्रा का मुख्य उद्देश्य होता है प्रजनन। इसके मुख्य प्रजनन स्थल है अलास्का के निकट, पूर्वी बेरिंग सागर मे स्थित, प्रिबिलोफ द्वीप, पश्चिमी बेरिंग सागर मे स्थित कमाडर द्वीप



अलास्कन फर सील जोडा बनाने और प्रजनन के लिए प्रिबिलोफ द्वीप जाती हैं।

समूह और जापान के उत्तर मे स्थित सखालिन द्वीप (सखालिन द्वीप रूस के पूर्वी तट पर जापान के उत्तर मे स्थित है)। प्रजनन मौसम जून के प्रथम सप्ताह मे आरम्भ होता है। मजेदार बात यह है कि नर पहले

ही इन द्वीपो पर पहुच जाते हैं। वहा पहुचकर वे अपने-अपने इलाके बाट लेते हैं और बहुत सतर्कता से उनकी रक्षा करते है। जब मादायें लम्बी यात्राओ के बाद इन द्वीपो पर पहुचती हैं तब प्रत्येक नर अधिक से अधिक मादाओ को अपने इलाके मे ले जाना चाहता है। इसके लिए नर सीलो मे आपस मे खूब लडाई होती है। कभी-कभी एक नर पचास-पचास मादाओ को अपने इलाके मे ले जाता है। इन इलाको मे मादाये पहले बच्चे जनती है। ये बच्चे पिछले वष बनाये गए जोडे के फलस्वरूप उनके गर्भ मे आए थे। इसके बाद नर और मादाये फिर जोडा बनाते हैं। ये कार्य लगभग दो महीने तक चलते है। सितम्बर के अत तक या अक्तूबर के प्रथम सप्ताह तक बच्चे माता का दूध पीना बन्द कर देते है और भली-भाति तैरना सीख जाते है। अब मादा सील फिर दक्षिण की ओर चल पडती है। प्रजनन के लिए हजारो-लाखो सील एक ही द्वीप पर एकत्रित हो जाती है। भोजन की तलाश मे वे काफी नीचे तक, जापान और केलीफोर्निया के तटो तक, आ जाती हैं। आमतौर से वे तट से लगभग 80 किलोमीटर दूर समुद्र मे रहती हैं पर कभी कभी अपने प्रिय भोजन, हेरिग मछली, की तलाश मे तट तक भी आ जाती है। अपने प्रजनन स्थल से चलकर फिर प्रजनन स्थल पर आने मे कभी-कभी इन्हे 9,000 किलोमीटर जैसी लम्बी यात्रा करनी पड जाती हैं।

अलास्कन फर सील के नर आमतौर से प्रजनन स्थलो से बहुत दूर नही जाते।

समुद्री सिह—"समुद्रो सिंह" नाम से प्रसिद्ध प्राणी वास्तव मे फर सील का ही वशज है। आकार मे वह फर सील से बडा होता है। यह प्रशात महासागर के दोनो, पूर्वी तथा पश्चिमी तटो, के निकट रहता है पर प्रजनन करने कुछ विशेष द्वीपो पर ही जाता है जिनमे एल्युशियन द्वीप समूह प्रमुख है। मादाये अक्सर मई से जुलाई तक बच्चे जनती है।

समुद्री सिह प्रजनन के लिए ही नही भोजन की खोज मे भी प्रवास-यात्राये करता है। गर्मियो मे वह उत्तर मे, बेरिग सागर तक, चला जाता है जबकि सर्दियो मे दक्षिण सागर मे लौट आता है।

जैसा कि उनके नाम से ही स्पष्ट है कास्पियन सील कास्पियन सागर मे ही रहती है। वह ठडे पानी मे रहना पसन्द करती है पर

कास्पियन सागर से, जो वास्तव मे एक बडी झील है, बाहर नही जा सकती। इसलिए मौसमो के अनुसार वे न केवल कास्पियन सागर के उत्तरी और दक्षिणी भागो के बीच यात्रा करती रहती हैं वरन् उथले और गहरे जलो मे भी आती-जाती रहती हैं।

ग्रे सोल अध महासागर मे रहने वाली एक बडी सील है जिसका नर तीन मीटर से भी बडा हो जाता है। यद्यपि यह सील प्रवास-यात्रा नही करती पर इसके बच्चे 300 किलोमीटर दूर तक चले जाते हैं।

हार्प सील अध महासागर के उत्तरी भागो और आर्कटिक महासागर मे रहती है। ग्रीन लैंड, न्यूफाउड लैंड और रूस के उत्तर-पश्चिमी तटो के निकट के ठडे, बर्फीले, सागरो मे पायी जाने वाली यह सील गर्मियो मे प्रजनन हेतु ध्रुवीय प्रदेशो मे चली जाती है।

वालरस

जन्तुवैज्ञानिको के अनुसार वालरस सील नही है। वह आर्कटिक सागर मे थल या बर्फ के निकट रहता है। यह 4 मीटर तक लम्बा हो जाता है। गर्मियो मे यह आर्कटिक सागर मे रहता है पर सर्दियो मे अध महासागर और प्रशात महासागर के उत्तरी भागो मे, जहाँ बर्फ अपेक्षाकृत कम होती है, आ जाता है।

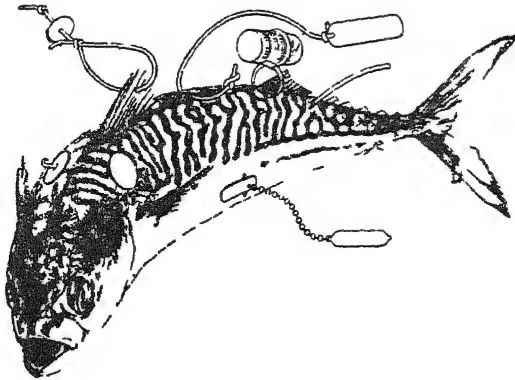
4 प्रवासी मछलिया

पक्षियो के बाद जो जीव सबसे लम्बी प्रवास-यात्राये करते हैं वे हैं मछलिया। अधिकाश मछलिया निरतर यात्राये करती रहती हैं। कुछ जातियो की मछलिया अपने निवास के इर्द-गिर्द ही यात्राये करती है जबकि कुछ हजारो किलोमीटर दूर स्थित नदियो और समुद्रो मे जाती है।

प्राचीन काल से ही मछुओ को यह मालूम था कि कुछ मछलिया वहुत दूर-दूर से आती है और कुछ वर्ष के बाद वे कही चली जाती है। पर उनके बारे मे वैज्ञानिक तरीको से खोज करने का काम सन् 1900 से आरम्भ हुआ। उस वर्ष इतालवी प्राणिवैज्ञानिक, मासिमी सेल्ला, ने ब्लूफिन ट्यूना का अध्ययन किया। ब्लूफिन ट्यूना को ट्यूनी फिश भी कहते है।

सेल्ला ने अपनी खोज मे पाया कि स्पेन के तटो पर पकडी जाने वाली ब्लूफिन ट्यूना के शरीर मे वे हुक फसे होते है जो केवल एजोर्स मे ही मछली पकडने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। एजोर्स अध महा सागर मे, स्पेन के तट से लगभग 2400 किलोमीटर दूर, स्थित द्वीप है। इस खोज ने सेल्ला के उत्साह को बहुत बढावा दिया और वे ब्लूफिन ट्यूना की प्रवास-यात्राओ की खोज मे एक जासूस की भाति जुट गए। धीरे-धीरे उन्हे पता चला कि भूमध्यसागर मे स्थित सार-डीनिआ द्वीप के तट पर पकडी जाने वाली ट्यूनाओ के शरीरो मे ऐसे हुक भी फसे होते है जो सयुक्त राज्य अमेरिका के तट पर इस्तेमाल किए जाते हैं। इसी प्रकार उन्हे भूमध्यसागर की ट्यूना मे नार्वे मे प्रयुक्त किए जाने वाले हारपून भी मिले। इन सबसे उन्होने यह निष्कर्ष निकाला कि अमेरिका के तट के निकट के तथा नार्वे के तटीय सागर मे रहने वाली ब्लूफिन ट्यूना यूरोपीय सागरो मे आ जाती है। बाद के सेल्ला के मछलियो की प्रवास-यात्राओ से सम्बन्धित अनेक निष्कर्षो की पुष्टि हुई।

यद्यपि सेल्ला की विधियां बहुत सुचारु नही थी—वे अपनी खोजो के लिए अवसरो पर ही आश्रित रहते थे—परन्तु उन्होने अनेक वैज्ञानिको को मछलियो की प्रवास-यात्राओ पर खोज करने की प्रेरणा अवश्य दी। अब वैज्ञानिक विभिन्न वशो और प्रजातियो की मछलियो की टोह रखने के लिए विभिन्न प्रकार के टैग इस्तेमाल करते हैं। ये मछलियो के शरीर मे इस प्रकार लगाए जाते है कि उन्हे (मछलियो) कोई हानि न पहुचे। इन टैगो मे मछली के बारे मे कुछ सूचनाये भी होती है। जब कोई आदमी मछली पकडकर उस सूचना को किसी अनुसधान केन्द्र मे पहुचाता है तब वह कुछ इनाम का अधिकारी भी हो जाता है।



विभिन्न जातियो की मछलियो की प्रवास यात्राओ के बारे मे जानकारिया हासिल करने के लिए उनके शरीर मे भिन्न-भिन्न किस्मो के टैग लगाये जाते हैं।

वैसे जल मे प्रवास-यात्राओ के दौरान मछलियो की टोह रखना बहुत कठिन कार्य होता है यद्यपि नदियो मे मछलियो की टोह रखना सागर मे टोह रखने से आसान होता है। जल मे कोई ऐसे चिह्न नही होते जिनसे स्थान विशेष का सदर्भ दिया जा सके। साथ ही स्वय मछलिया भी नजर से ओझल रहती है। जल-जहाज, पनडुब्बिया, तथा गोताखोरी उपकरण इस बारे मे बहुत सहायक सिद्ध नही होते। सोनार और ट्रासमीटर जैसे यन्त्र भी एक हद तक ही उपयोगी होते है। इसीलिए आज हमे विभिन्न वशो और प्रजातियो की मछलियो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे काफी ज्ञान है। हम यह जानते है कि इन

यात्राओ के दौरान वे अपना मार्ग-निर्देशन कसे करती है परन्तु अब भी अनेक रहस्यो का उद्घाटन नही हो पाया है। उदाहरणार्थ अब तक यह ठीक-ठीक नही मालूम कि मछलिया गहरे सागरो से नदियो और तालाबो मे कैसे आ जाती हैं।

ट्यूना के अतिरिक्त अन्य अनेक मछलिया भी लम्बी-लम्बी प्रवास-यात्राय करती रहती हैं। ट्यूना के ही परिवार की एक मछली, बानिटो, काले सागर और मरामरा सागर मे अण्डे देकर, भूमध्यसागर मे से तैरती हुई, खुले अध महासागर मे चली जाती है। पर अगले वर्ष अडे देने के लिए फिर पुराने सागर मे आ जाती है।

ट्यूना परिवार की ही एक और मछली है अल्बाकोर, जो अध और प्रशात महासागरो के उष्ण कटिबधीय क्षेत्रो मे पायी जाती है। वह सदा गर्म पानी मे रहती है। फ्रास के सागरवैज्ञानिक वाई लि दानोइस ने अव महासागर मे रहने वाली अल्बाकोर मछलियो का अध्ययन किया हे। उन्होने पाया कि वयस्क और एक वर्ष तक की अल्बाकोर फरवरी के महीने मे उत्तर की ओर चल पडती है। पर वह हमेशा 14^0 सै या अधिक ताप के गुनगुने पानी मे ही रहती है। इसके लिए उसे समय-समय पर अपने निवास स्थान बदलते रहना पडना है। साथ ही वह कभी सागर की सतह पर आ जाती है और कभी बहुत गहराई मे चली जाती हे।

प्रवास-यात्राये करने वाली मछलियो मे प्लेइस, हैरिंग, कॉड, मैकरल आदि शामिल है। पर सबसे आश्चयजनक प्रवास-यात्राये होती है सालमन और ईल की। सालमन सागर मे रहती है पर अडे देने के लिए नदी मे जाती है और वह भी उसी नदी मे जहा वह पैदा हुई थी। ईल नदी मे रहती है पर अडे देने के लिए एक खास सागर, सारगोसा सागर, मे जाती है।

रहे सागर मे अडे दे नदी मे

सालमन अध और प्रशात, दोनो महासागरो, मे तटीय प्रदेशो मे पायी जाती है। अध महासागर मे सालमन, अमेरिका के पूर्वी तट पर आर्चेंगल तक तथा यूरोप के पश्चिमी तट पर आर्कटिक से पोर्तगाल तक पायी जाती हें। इन सब क्षेत्रो की सालमन एक ही प्रजाति की होती है। इसके विपरीत उत्तर प्रशात महासागर मे पायी जाने वाली साल-

मन पाच विभिन्न किस्मो की होती है स्प्रिंग (किंग या सेक्रेमेन्टो अथवा चिनक) सालमन, लाल सालमन, साके या नीली-काली साल-मन, कोहो (रजत सालमन) कूबड वाली सालमन (गुलाबी सालमन) और डाग (चक) सालमन।

सालमन की प्रवास-यात्राओ के बारे मे सबसे पहले अध्ययन सन् 1653 मे इज़ाक वाल्टन ने किए थे। उन्होने युवा (दो या तीन वर्ष उम्र की) सालमनो, जिन्हे स्मोल्ट कहा जाता है, की पूछो पर फीता या धागा बाधकर प्रयोग किए। परन्तु इस दिशा मे गम्भीर अध्ययन किए गए 1905-1906 मे। उस वर्ष स्काटलैंड की टे नदी मे रहने वाली हजारो सालमनो के पश्च पखो (डारसल फिन) के सामने के मास मे जर्मन-सिल्वर के तार के छल्ले फसाकर उन्हे छोडा गया। बाद मे ये प्रज-नन के लिए नदी मे फिर लौट आयी। वर्ष1906 और1909 के बीच इस प्रकार के छल्ले फसी एक सौ ग्यारह मछलिया पकडी गईं। इनसे पहली बार यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हुआ कि अध महासागर मे रहने वाली सालमनो मे अपने जन्म-स्थल पर वापिस आने की तीव्र प्रवृत्ति होती है।

इसके कुछ वर्ष बाद ए जी हट्समैन और ए सी ह्वाइट नामक वैज्ञानिको ने कनाडा की एप्पल नदी मे रहने वाली सालमनो पर प्रयोग किए। एप्पल नदी एक स्थान पर दो धाराओ, पूर्वी धारा और दक्षिणी धारा, मे बट जाती है। प्रयोगो के समय दक्षिणी धारा मे प्रति-वर्ष अध महासागर से सालमन प्रजनन के लिए आती रहती थी। पूर्वी धारा को किसी कारण 10 वर्ष पहले रोक दिया गया था। इसलिए उसमे सालमन नही आ पाती थी। अपने प्रयोगो मे हट्समैन और ह्वाइट ने 25000 शिशु सालमन मछलियो को एक अन्य नदी से लाकर तथा उनके शरीर मे छल्ले पहनाकर पूर्वी शाखा मे छोड दिया। इनमे से 3241 मछलिया ही वयस्क अवस्था तक जीवित रह पायी। बाद मे इनको ऐसे स्थान पर छोडा गया जहा वे सागर को जा सकती थी। कुछ वर्ष बाद इनमे कुछ मछलिया पुन पूर्वी शाखा मे पायी गईं जहा वे प्रजनन के लिए वापस आयी थी।

बाद मे ब्रिटिश कोलम्बिया की नदियो मे भी ऐसे प्रयोग किए गए। इन प्रयोगो मे प्रशात महासागर की उत्तर अमेरिकन सालमन मछलिया ली गइ। ये गुलाबी सालमन थी। इन प्रयोगो से भी सालमन

की प्रवास-यात्रा की पुष्टि हुई ।

आज हमे सालमन की प्रवास-यात्राओ के बारे मे काफी जान कारी है । अब हमे मालूम है कि वह अपने जीवन का कुछ भाग खारी पानी (सागर) मे, और कुछ ताजे पानी (नदियो और नालो) मे बिताती है । प्रशात महासागर मे रहने वाली सालमन अडे देने के लिए

समुद्र से नदी मे आने वाली सालमव का जीवन चक्र 1 वयस्क सालमन, 2 जल प्रपातो मे छलाग लगाती हुई, 3 नर हमेशा मादा के साथ रहता है, 4 अडे, 5 लार्वे, 6 शिशु, 7 सागर यात्रा के लिए तैयार ।

नवम्बर-दिसम्बर माह मे सागर से नदियो मे आ जाती है । नदी मे वह बहाव की उल्टी दिशा मे तैरती है और तेज प्रवाह को चीरती है । जल-प्रपातो और बाधो को पार करने के लिए वह 5 से 6 मीटर तक की ऊची छलागे भी लगा लेती है । वह उस समय तक बहाव की उल्टी दिशा मे यात्रा करती रहती है जब तक कि वह उस छोटी पर तेज बहाव वाली सहायक नदी के उद्गम स्थल पर नही पहुच जाती है जहा वह स्वय जन्मी थी । इस यात्रा मे नर और मादा साथ-साथ रहते हैं । वैसे इस यात्रा मे मनुष्य से लेकर भालू तक, अनेक जीव उनका भरपूर

शिकार करते है।

अत मे अनेक खतरो का सामना करती हुई मादा सालमन जब गतव्य स्थल पर पहुच जाती है तब नदी की ककरीली तली मे एक चौडा, और आधे मीटर से कुछ गहरा गड्ढा खोदती है। इस दौरान नर आस पास चक्कर काटता रहता है। मादा गड्ढे मे एक बार मे लगभग 1000 की दर से करीब 30,000 अडे देती है। फिर नर उन पर अपने शुक्राणु छिडक देता है जिससे अडे निषेचित हो जाते है। बाद मे मादा इन अडो को रेत, मिट्टी से ढक देती है। एक ही जगह पर पास-पास अनेक मादाये अडे देती हैं। इससे उनके थक्के से बन जाते हैं। वे पानी के साथ नही बहते।

अडे देने के बाद हजारो किलोमीटर की कठिन, दुर्गम यात्रा का उद्देश्य पूरा हो जाता है। अब वापस यात्रा आरम्भ होती है। अब तक सालमन थक कर एकदम निढाल हो चुकी होती है क्योकि सागर से यात्रा आरम्भ करने के बाद अब तक उसने कुछ भी नही खाया था। इसलिए वह वापस समुद्र तक पहुच ही नही पाती। वह या तो किसी जानवर की शिकार बन जाती है अथवा थक टूट कर स्वय ही मर जाती है।

कहा जाता है अध महासागर की सालमन मछलियो मे से कुछ वापस सागर तक पहुच जाती है। वहा वे कुछ वर्ष तक विचरण करती है और दूसरी बार भी अडे देने उसी पुराने स्थान पर आ जाती हैं। पर वे फिर सागर नही पहुच पाती।

मादा सालमन ने सहायक नदी के उद्गम स्थल के पास जो अडे दिए थे वे वसत ऋतु के आने तक यो ही पडे रहते हैं। वसत मे उनमे से लार्वे निकलते है। अगले वर्ष तक ये बढकर लगभग 15 सेन्टीमीटर लम्बी मछलिया बन जाते है। अगले दो वर्ष तक ये मछलिया नदी मे ही रही आती है। पर 3-4 वर्ष की हो जाने पर वे एकाएक सागर की ओर चल पडती है। अध महासागर की कुछ सालमन मछलिया सात वर्ष तक नदियो मे रही आती हैं।

जब वे मुख्य नदी के मुख के निकट पहुचती है तो कुछ दिन के लिए वहा रुक जाती है। इस दौरान उनके शरीर मे कुछ ऐसे परिवर्तन हो जाते है जो उन्हे सागर मे जीवन बिताने के लायक बना देते है। इन परिवर्तनो के बाद सालमन खुद सागर मे जा पहुचती है और अलग

अलग दिशाओ मे चली जाती हैं। वे दूर-दूर तक, हजारो किलोमीटर के क्षेत्र मे, फैल जाती हैं।

तीन-चार वर्ष सागर मे बिताने के बाद जब वे वयस्क हो जाती हैं तब फिर उस नदी की ओर चल पडती है जिसमे उनका जन्म हुआ था। मजेदार बात यह है कि हर सालमन मछली को उस नदी का मुख 'याद' रहता है जिसमे से वह सागर मे आयी थी। इस नदी तक पहुचने के लिए उसे कभी-कभी 2000 किलोमीटर जैसी लम्बी दूरी भी तय करनी पड जाती है। वास्तव मे उसे तो वह सहायक नदी और वह स्थल भी, जहा उसका जन्म हुआ था, सही-सही "याद" रहता है। उत्तरी प्रशात महासागर मे पायी जाने वाली किग सालमन मछली को कदाचित सबसे लम्बी, 3600 किलोमीटर लम्बी, यात्रा करनी पडती है।

वैज्ञानिको का कहना है कि सालमन की सूघने की क्षमता बहुत अधिक होती है। वह किसी भी नदी को उसकी विशेष गध से पहचान लेती है। यह गध उस मिट्टी की, जिस पर से नदी बहती है, उसके किनारो तथा उन पर लगे पेड-पौधो आदि की वजह से होती है। सालमन मछली को "अपनी" नदी की गध बरसो तक याद रहती है। इसी गध के सहारे वह अपने जन्म-स्थल को भी ढूढ निकालती है। कहा जाता है कि जवान मछलियो की घ्राण शक्ति बूढी मछलियो की अपेक्षा अधिक होती है। इस सम्बन्ध मे हैसलर और विस्वी नामक वैज्ञानिको ने अनेक प्रयोग किए है। उन्होने वाशिगटन मे इस्सागाह नदी की दो शाखाओ से वयस्क कोहो सालमन पकडी। फिर उनमे से आधी मछलियो के नाक-छिद्रो को बन्द करके (जिससे वे गध को न सूघ सके) और आधी को वैसे ही पानी की ऐसी टकी मे छोड दिया जिसमे मोरफोलिन सुगध मिलायी गई थी। मोरफोलिन एक ऐसी सुगध है जिसे मछलिया पहचान सकती हैं। बाद मे सब मछलियो को इस्सागाह नदी मे, उस स्थल से पहले छोड दिया गया, जहा नदी शाखाओ मे विभक्त होती है। ऐसा करने पर केवल वे ही मछलिया अपनी सही शाखा मे जा सकी जिनकी नाक बन्द नही की गई थी।

सालमन की घ्राण शक्ति के बारे मे ब्रेट और मैक किनोन नामक वैज्ञानिको ने भी कुछ प्रयोग किए हैं। अपने प्रयोगो मे उन्होने मनुष्य की त्वचा, हिरन के पैर, रीछ के पजे, समुद्री सिह के मास जैसे 54

पदार्थों की गधो के प्रति कोहो और वसत सालमनो की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। उन्होने पाया कि सालमन पर उन्ही सुगधों का अधिक प्रभाव पडता है जो उसके शत्रुओ की होती है। उसके फलस्वरूप वह कुछ मिनटो के लिए रुकती है पर फिर अपने गतव्य की ओर चल पडती है।

कुछ लोगो का विचार है कि सालमन अपनी दिशा ज्ञात करने के लिए सूर्य की किरणो का उसी प्रकार उपयोग करती है जसे पक्षी करते हैं। रात मे वह चन्द्रमा की रोशनी का उपयोग कर लेती है। इस प्रकार वह तट के सहारे-सहारे उस समय तक बढती जाती है जब तक वाछित मुख्य नदी के मुख तक नही पहुच जाती।

इसके अतिरिक्त सालमन की थायरायड ग्रथि भी विभिन्न लवणताओ के जलो मे आसानी से अतर कर सकती है। कोहो सालमन को थायराइड हारमोनो के इजेक्शन देने पर वह समुद्री पानी खोजने लगती है। पर ये इजेक्शन बन्द कर दिए जाने पर उसे नदी के पानी की चाह होने लगती है।

कुछ वर्ष पहले सालमन के बारे मे नया मत भी प्रगट किया गया है। इसके अनुसार यह जरूरी नही कि प्रशात महासागर की सालमन मछलिया अडे देने के लिए उसी नदी मे जाये जहा वे पैदा हुई थी। इस बारे मे किए गये प्रयोगो मे अपर फ्रेजर नदी मे सालमन के कुछ अडे और शिशु रखे गये। इनसे विकसित वयस्क सालमन सागर मे चली गईं पर प्रजनन के लिए वापस अपर फ्रेजर नदी में नही आयी।

ईगल नदी मे किए गए प्रयोग मे भी यही बात पायी गई।

पर कनैडियन, अमेरिकी और जापानी वैज्ञानिको द्वारा पकडी और अकित की गई हजारो सालमन मछलियो मे से अधिकाश अपनी 'जन्म-नदी' मे ही लौटती पायी गईं।

मछली से चिपटी मछली

सालमन की भाति ही लैम्प्रे मछली भी सागर मे रहती है पर अडे दने के लिए नदी मे आती है। साप जैसी दिखने वाली, पर बिना जबडे की यह मछली, सागर मे 12 से 20 महीने तक रहती है।

विचित्र बात यह है कि खुले सागर मे यह मछली दूसरी किसी मछली से चिपटी रहती है। चिपटी रहने के साथ-साथ यह उसके मास

को भी अपनी खुरदरी जीभ से चाट-चाट कर खाती रहती है। अपनी सवारी के लिए लैम्प्रे आमतौर से हैरिंग या ट्राउट जैसी मछली चुनती है। जब वह मछली मर जाती है तो लैम्प्रे उसे छोड देती है। नदी मे अडे देने जाने के पहले भी लैम्प्रे उसे छोड देती है।

सालमन की भाति लैम्प्रे भी नदी के उद्गम स्थल के निकट ही अडे देती है। मादा नदी की तली मे लगभग 60,000 अडे दे देती है। नर उन पर अपने शक्राणु बिखेर देता है। उसके बाद उन्हे अच्छी तरह ढक दिया जाता है। लैम्प्रे के जीवन का मुख्य उद्देश्य यही होता है। वास्तव मे वह इसी काम के लिए जीवित रहती है। वह सम्पन्न हो जाने पर नर और मादा, दोनो ही, मर जाते हैं।

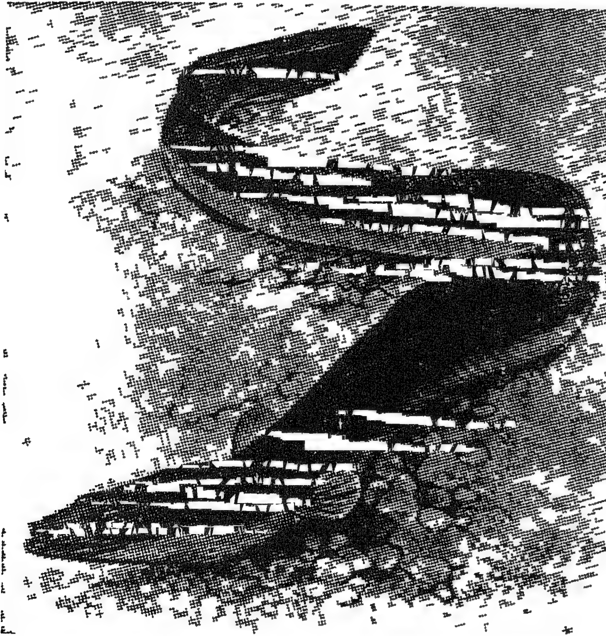
अडो मे से 12 से 14 दिनो बाद बच्चे निकल आते है जो 10 दिन बाद नदी के बहाव के साथ बहने लगते है। इस समय वे लगभग 0 75 सेन्टीमीटर लम्बे हो जाते है। अन्त मे कुछ बच्चे नदी की तली मे, कीचड मे पहुच जाते है जहा वे छोटे-छोटे कीडो को खाते रहते है। 2 से 5 साल तक इसी प्रकार जीवन बिताते हुए वे वयस्क हो जाते हे। उस समय तक वे लगभग 15 सेन्टीमीटर लम्बे हो जाते हैं। उनका मुह ऐसा हो जाता है कि वे अन्य मछलियो का खून चूस सके। उनकी जीभ खुरदरी हो जाती है। अब वे सागर की ओर चल पडते है।

रहे नदी मे अडे दे गहरे सागर मे

उत्तर अमेरिका और यूरोप की नदियो मे पाये जाने वाली ईल मछली भी अपनी लम्बी प्रवास यात्राओ के लिए प्रसिद्ध है। साप की भाति दिखने वाली यह मछली अडे देने के लिए सारगोसा सागर मे जाती है। सारगोसा सागर अन्ध महासागर का वह भाग है जो वैस्ट इडीज द्वीप समूह के उत्तर पूर्व मे स्थित है। इसमे लम्बी-लम्बी घासे उगती हैं। यहा इन घासो के इतने घने झुड है कि आमतौर से बडे जल जहाज भी उनमे बचने की कोशिश करते है।

पहले यह समझा जाता था कि ईल मे प्रजनन अग होते ही नही हैं। "जब वह अपने शरीर को किसी पत्थर आदि से रगडती है तो उसके शरीर के कुछ अग झड जाते है और वे ही उमकी सतानो का रूप धारण कर लेते हैं।" पहली बार, वर्ष 1777 मे, बोलाना विश्वविद्यालय के प्रो कार्नो मुन्डीनी ने मादा ईल के शरीर मे अडो की उपस्थिति ज्ञात

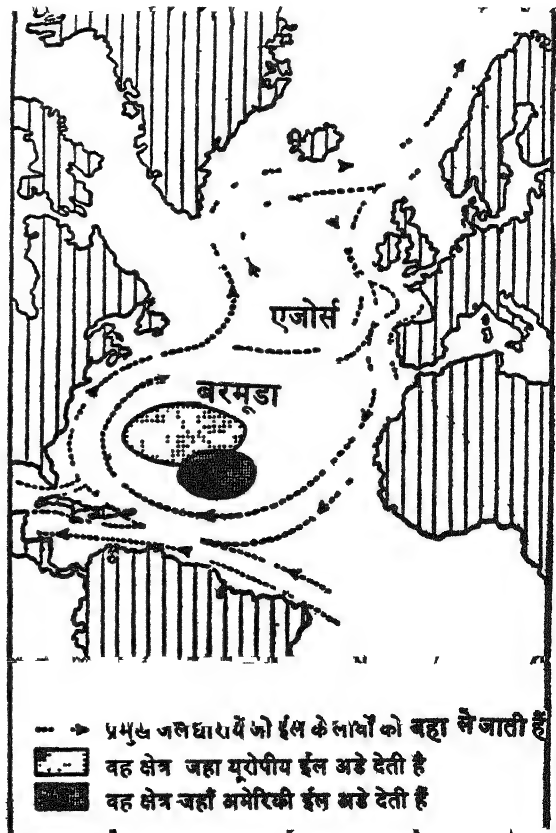
की। उसके लगभग सौ वर्ष बाद नर ईल के प्रजनन अगो के बारे मे भी जानकारी प्राप्त हुई। पर उस समय तक वैज्ञानिको को यह नही मालूम हो सका कि ईल नर और मादा कहा और कब जोडा बनाते हैं और मादा कहा अडे देती है। इतालवी वैज्ञानिक फ्रासेस्को रेडी ने 1684 मे यह परिकल्पना की थी कि ईल प्रजनन के लिए सागर मे जाती है पर लगभग 200 वर्षों तक इस परिकल्पना की ओर किसी ने भी ध्यान नही दिया। अन्त मे वर्ष 1900 के आसपास डेनमाक के प्रो योहान्स स्मिट ने गहन अध्ययन किए। उन्होने वर्ष के विभिन्न समयो मे अन्ध महासागर के विभिन्न भागो से ईल के लार्वे इकट्ठे किए। उनके प्राप्ति स्थानो के मानचित्र बनाये और उस स्थान का अनुमान



अमेरिकी वयस्क ईल सारगोसा सागर के लिए यात्रा करने से पहले ईल का रग पीले धूसर से जैतूनी हरा या गहरा ब्राउन हो जाता है और उसका निचला भाग चादी जैसा सफेद। साथ ही वह भोजन करना बन्द कर देती है। उसका सिर नुकीला हो जाता है, उसकी आँखें चौडी हो जाती हैं।

लगाया जहा अडो मे से लार्वे निकलने चाहिए। यह स्थान सारगोसा सागर होना चाहिए था और सारगोसा सागर मे खोजबीन करने से वास्तव मे वहा ईल के अडे मिले। बाद मे इस खोज की पुष्टि हुई। वास्तव मे अडे देने के लिए यूरोपीय और अमेरिकी ईल सारगोसा सागर ही जाती हैं।

नर और मादा ईल पश्चिम यूरोप की नदियो से निकलकर, 5000 किलोमीटर से अधिक दूरी की यात्रा करके वहा पहुचती हैं। यात्रा के दौरान, नदी का मुख छोडने के बाद, ईल कुछ भी नही खाती।



प्रजनन हेतु ईल की प्रवास यात्रा

वास्तव मे इस यात्रा के दौरान उसकी आहार नली ही लुप्त हो जाती है। पर यात्रा के दौरान इससे भी एक विचित्र बात और होती है। ईल का रग पीले धूसर से जैतूनी हरा अथवा गहरा ब्राउन हो जाता है तथा उसकी आखे फैलने लगती हैं। धीरे-धीरे आखें फैलकर पूरे मुह को ढक लेती हैं। ईल को आखो के बढने की जरूरत देखने के लिए नही होती क्योकि ईल आमतौर से अधेरी रातो मे ही यात्रा करती है। सारगोसा सागर पहुच कर वह 400 से 600 मीटर गहरे पानी मे, जहा ताप 16^0 से होता है, वसत ऋतु के आरम्भ मे, अडे देती हैं।

गर्मी के आरम्भ मे इन अडो से छोटे छोटे लार्वे निकलते हैं। ये 'लेप्टीसेफेलस' कहलाते हैं। आधे सेन्टीमीटर से भी छोटे इन लार्वों के लिए तैरकर अध महासागर पार करना सम्भव नही होता। इसलिए ये अपने-आपको गल्फ स्ट्रीम जलधारा मे छोड देते हैं। गल्फ स्ट्रीम एक गर्म जलधारा है जो मैक्सिको की खाडी से आरम्भ होकर पहले उत्तर अमेरिका के पूर्वी तट के सहारे-सहारे उत्तर की ओर बढती है। पर नोवा स्कोशिआ प्रायद्वीप के पास, पश्चिमी पवनो के मार्ग मे आ जाने पर, वह यूरोप की ओर मुड जाती है और पूरे अध महासागर को पार करके ब्रिटिश द्वीप समूह के उत्तर तक जा पहुचती है।

गल्फ स्ट्रीम मे बहते-बहते ये लार्वे लगभग तीन वर्ष मे पश्चिम यूरोप जा पहुचते हैं। इस समय तक ये लगभग 10 सेन्टीमीटर तक लम्बे हो जाते हैं। एक बार नदियो के मुखो पर पहुचने के बाद इनके शरीर मे परिवर्तन आ जाते हैं। ये 'ग्लास ईल' मे परिवर्तित हो जाते है जो नदियो के अन्दर चली जाती हैं। नदियो मे ये विभिन्न स्थानो पर यौन रूप से वयस्क होने तक रही आती हैं। नर ईल अपेक्षाकृत जल्दी वयस्क हो जाती है। वह लगभग 6 वर्ष मे वयस्क हो जाती है जबकि मादा ईल को वयस्क होने मे प्राय 12 वर्ष का समय लग जाता है। वयस्क नर ईल लगभग आधे मीटर लम्बी होती है पर मादा ईल करीब डेढ मीटर।

अमेरिकी ईल के लार्वे अडो से निकलने के एक वर्ष के अन्दर सारगोसा सागर से उत्तर अमेरिका के पूर्वी तट की ओर चले जाते हैं।

ईल इडोनेशिया की नदियो मे भी पायी जाती है। पर प्रजनन के लिए वे सारगोसा सागर नही जाती। वे इडोनेशिया के तट के पास ही अडे दे देती है।

प्रवास-यात्रा चाहे छोटी हो अथवा लम्बी, रहस्य यह है कि उसके दौरान ईल अपना दिशा-निर्देशन कैसे करती है। यूरोप से सारगोसा सागर आते समय ईल को गल्फ स्ट्रीम के विपरीत तरना पडता है। यद्यपि अनेक मछलिया जलधारा की विपरीत दिशा मे तैरती हैं पर ईल के बारे मे वैज्ञानिको का मत भिन्न है। उनका मत है कि वह उस धारा मे तैरनी है जो गल्फ स्ट्रीम के नीचे प्रतिकूल दिशा मे बहती है। इस बारे मे यह भी सुझाव है कि भूमध्यसागर से अन्ध महासागर मे आने वाली ईल पानी की लवणता और तापो मे अन्तर से अपनी दिशा निर्धारित कर लेती है। इन्ही के आधार पर वह सारगोसा सागर को भी 'पहचान' लेती है। सारगोसा सागर के पानी की लवणता और ताप अपेक्षाकृत अधिक है।

अमेरिकी नदियो और यूरोपीय नदियो मे पाये जाने वाली ईलो की शारीरिक बनावट मे अन्तर होता है। यूरोपीय ईल की रीढ मे अमेरिकी ईल की तुलना मे अधिक कशेरुक (वर्टीब्रा) होते है।

अब तक भी वैज्ञानिक यह ठीक-ठीक नही जानते है कि ईल लार्वे सागर से नदी के मुख मे कैसे जाते हैं। समझा जाता है कि सागर मे उठने वाली ज्वारीय लहरे उन्हे नदियो के मुखो मे पहुचा देती है। पर भाटा जब उन्हे वापस सागर मे ले जाना चाहता है तब लार्वे स्वय को रेत मे दबा लेते है।

वयस्क ईलो को तालाबो मे पालने पर यह पाया गया है कि प्रवास-यात्रा का समय आने पर वे भी पक्षियो की भाति बेचैन हो जाती है।

सर्वोच्च ज्वार के दौरान अडे देना

केलीफोर्निया के दक्षिणी तट के पास सागर में रहनेवाली ग्रुनिआन छोटे आकार की मछली है जिसके प्रजनन गुणो पर चाद के घटने-बढने का बहुत असर पडता है। मार्च से अगस्त तक हर अमावस्या और पूर्णिमा की रात को ये मछलिया तट के रेतीले भागो मे आ जाती हैं। इन दोनो रातो को ज्वार सबसे तेज होता है। इन रातो को उठने वाली लहरो की ऊचाई अन्य रातो को उठने वाली लहरो से अधिक होती है।

ग्रुनिआन झुडो मे रहती है जिनमे नर और मादा दोनो होते हैं

बल्कि एक मादा के साथ दो या तीन नर चिपटे होते है। इनकी सख्या इतनी अधिक होती है कि पूरा तट ही इनकी वजह से, चादी जैसा दिखने लगता है। सर्वोच्च ज्वार के बाद मादा रेत मे अडे देती है और नर उन पर शुक्राणु छिडक देता है। अडे देने के बाद मछलिया वापिस लौट जाती है। दो सप्ताह बाद जब फिर से सर्वोच्च ज्वार आता है तब तक अडो मे से बच्चे निकल चुके होते हैं।

जरूरत पर ही प्रवास-यात्रा

ब्रिटेन के उत्तर मे स्थित उत्तर सागर मे पाये जाने वाली प्लेस मछली को अगर अडे देने के लिए उपयुक्त वातावरण मिल जाता है तब वह प्रवास-यात्रा नही करती। इस प्रकार के उपयुक्त स्थल का चयन करते समय वह इस बात का भी ध्यान रखती है कि वह वातावरण उसके बच्चो को भी सुरक्षा प्रदान करे। ऐसा वातावरण न मिलने पर प्लेस उपयुक्त स्थल की खोज के लिए प्रवास यात्रा करती है। आमतौर से वह अडे देने के लिए इग्लिश चैनल के पूर्वी सिरे पर आ जाती है। निश्चय ही अपना कार्य सम्पन्न हो जाने के बाद वह वापस उत्तर सागर को लौट जाती है।

इग्लिश चैनल मे ही अडो से लार्वे निकलते है। ये लार्वे अपने आप को जल धाराओ मे छोड देते है जो उन्हे बहाकर उत्तर सागर मे ले जाती है। यहा ये वयस्क प्लैसो के साथ तटीय सागर मे रहने लगते है।

पर स्काटलैड के पूर्वी तट के निकट के सागर मे पाये जाने वाली प्लैस अडे देने के लिए उत्तर की ओर जाती है। विचित्र बात यह है कि इस यात्रा के लिए उसे जलधारा के प्रवाह के विपरीत तैरना पडता है। अडे देने के बाद वह जलधारा के साथ तरती हुई वापस आ जाती है।

शैटलैड द्वीपो के निकट के सागर मे पाये जाने वाली प्लेस अपनी प्रवास-यात्रा के आरम्भ मे उस जलधारा के विपरीत तैरती है, जो द्वीपो के इर्द-गिर्द, घडी की दिशा मे, बहती है। वापस लौटते समय वह उसके प्रवाह का उपयोग करती है।

वैज्ञानिको ने जब अपने प्रयोगो मे स्काटलैड के पूर्वी तट की प्लेस को शैटलैड के निकटवर्ती सागर मे छोडा तब वह स्थानीय प्लेसो के समान ही प्रवास-यात्रा करने लगी। पर वह उस पथ पर यात्रा करने

नही निकली जिस पर स्थानातरण से पहले निकला करती थी।

भारतीय मछलिया

हमारे देश मे भी ऐसी अनेक जातियो की मछलिया पायी जाती हैं जो नियमित रूप से प्रवास-यात्रायें करती हैं। ऐसी मछलिया हमारे निकटवर्ती सागरो मे भी पायी जाती हैं और हमारी नदियो मे भी। इनमे कई ऐसी हैं जो रहती तो सागरो मे हैं पर अडे देने नदियो मे आती हैं और कुछ ऐसी हैं जिनका स्वभाव इसके विपरीत होता है। इनके साथ ही ऐसी मछलिया भी हैं जो नदियो में ही विभिन्न स्थलो के बीच यात्रा करती रहती हैं। ये यात्राये लम्बी भी होती हैं और छोटी भी।

हिलसा—लम्बी प्रवास-यात्राये करने वाली भारतीय मछलियो का कदाचित सबसे अच्छा उदाहरण है हिलसा (**हिलसा इलिशा**) का। हिलसा हमारे तटवर्ती सागरो मे, सौराष्ट्र के तट से लेकर बगाल तक पाई जाने वाली, लगभग 40 सेन्टीमीटर लम्बी मछली है। इसका नर मादा की तुलना मे छोटा और हल्का होता है। इसका रग सुनहरा तथा बैंगनी पुट लिये हुए रुपहला और ऊपर की ओर हरापन लिए हुए होता



हिलसा मछली

है। यह एक स्वादिष्ट खाद्य मछली है जिसे बगाल, आध्र और तमिल-नाडु मे बहुत शौक से खाया जाता है। इसमे हड्डिया काफी होती है पर वसा की मात्रा भी बहुत (20 प्रतिशत) होती है। इसीलिए कदा चित इसे पसद किया जाता है।

यह आमतौर से नदियो के मुखो के निकट के सागरो (दोनो, अरब

सागर और बगाल की खाडी) मे पायी जाती है। पर अडे देने के लिए नदियो मे, ऊपर की ओर आ जाती है। इस प्रकार नर्मदा, ताप्ती, कावेरी, कृष्णा, गोदावरी, महानदी, गगा और ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियो के ऊपरी भागो मे ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहा हिलसा अडे देती है। इसीलिए हिलसा बिहार और उत्तर प्रदेश मे गगा तथा आगरा और दिल्ली के निकट यमुना में पायी जाती है। मजेदार बात यह है कि यह वर्ष मे दो बार—वर्षा काल के आरम्भ से लेकर नवम्बर तक और फिर जनवरी-फरवरी मे—अडे देती है। यह बहुत बडी मात्रा मे—2,50,000से 16,00,000 तक अडे देती है पर पूरे अडे एक बार मे नही वरन् कई बार मे देती है। अडे देने के बाद हर बार यह वापस सागर मे चली जाती है।

मादा हिलसा गर्भाधान के 12 से 24 घटे बाद ही अडे देने लगती है। नदियो मे ही अडो से लार्वे निकलते हैं जो लगभग 2 3 मिलीमीटर लम्बे होते हैं। आरम्भ मे ये बहुत तेजी से बढते हैं और 20 मिलीमीटर लम्बे होने तक शक्ल और गुणो मे प्रौढ हिलसा सदृश हो जाते हैं। फिर ये सागर की ओर चल पडते हैं। दूसरे वर्ष ये यौन रूप से वयस्क हो जाते है तथा जोडा बनाने और अडा जनन के लिए नदियो मे, ऊपर की ओर, चल पडते हैं।

हिलसा प्लाक्टनभक्षी मछली है, परन्तु वह अन्य जीवो को भी खा लेती है। इसके मुह मे छन्ने जैसे अग होते हैं जिससे पानी तो बाहर निकल जाता है पर उसमे मौजूद सूक्ष्मजीव मुह मे ही रह जाते हैं। प्रवास-यात्रा के दौरान इसकी खुराक कम हो जाती है। अडे देने के दौरान यह कुछ भी नही खाती। बूढी, थकी हुई मछलिया तली के जीव खाती हैं जबकि जवान मछलिया न तो सतह पर रहती हैं और न ही तली पर।

हिलस की अधिकाश किस्मे अपने जीवन का एक भाग सागर मे बिताती है और एक भाग नदियो मे। पर उसकी कुछ किस्मे ऐसी भी है जो अपना पूरा जीवन नदियो मे ही बिताती हैं। ये किस्मे बिहार और उत्तर प्रदेश मे, गगा नदी मे, भी पायी जाती है। ये नदियो मे ही अडे देती हैं। उनसे निकलने वाले लार्वे और बच्चे भी सागर नही जाते। समझा जाता है कि इन किस्मो की हिलसा उन समुद्री जीवो को खाती है जो अपने प्रजनन के लिए नदियो मे चले जाते है।

उडीसा के तट पर चिल्का झील मे पाये जाने वाली हिलसा भी सदैव उसी झील मे रहती है।

पिछले कुछ दशाब्दो मे नदियो पर बनाए गये बाधो के प्रभाव हिलसा की प्रवास यात्राओ पर भी पडे हैं। पहले हिलसा अडे देने हेतु कावेरी नदी मे, बहुत बडी सख्या मे, आ जाती थी, परन्तु मैटूर बाध, महान एनिकट और निचले एनिकट के निर्माण के बाद उसकी यात्राये बहुत कम हो गई है। इसी प्रकार गोदावरी, कृष्णा और महानदी मे भी बाध आदि बनने से हिलसा की अवरोहण सीमा बहुत सीमित हो गई है। दामोदर नदी व्यवस्था मे बाध बनने के कुप्रभाव हुगली की हिलसा मात्स्यकियो पर भी पडे है। यही दशा पाकिस्तान मे सिन्धु नदी मे भी हुई है। यद्यपि हिलसा सालमन की भाति नदी के प्रवाह के विपरीत तैरती है, पर वह उसकी भाति ऊची-ऊची छलागे लगा कर बाधो और जल-प्रपातो को पार नही कर सकती। इसीलिए बाध आदि बनने के फलस्वरूप अनेक नदियो मे हिलसा मात्स्यकिया लगभग समाप्तप्राय हो गई हैं।

ऐंग्युइल्ला—यूरोप और अमेरिका की नदियो मे रहने वाली और अडे देने के लिए सारगोसा सागर मे जाने वाली ईल के बारे मे आप ऊपर पढ चुके है। ऐसी ही एक मछली हमारे देश की उन नदियो मे पायी जानी है जो पूर्वी तट पर सागर मे गिरती हैं। यह मछली **ऐंग्यु-इल्ला** प्रजाति की है। इसे 'भारतीय ईल' भी कहा जा सकता है।

ऐंग्युइल्ला की दो प्रजातियो—**ऐंग्युइल्ला बेगानेंसिस** और **ऐंग्यु-इल्ला बाइकलर**—की मछलिया, हमारे देश की नदियो और तटवर्ती सागरो मे पायी जाती है। दोनो प्रजातियो की मछलिया देखने मे साप जैसी होती है। उनके जबडे नीचे की ओर घुसे हुए होते है और शल्क छोटे होते है। ये यूरोप की **ऐंग्युइल्ला** से छोटी होती है। यूरोपीय और अमेरिकी ईलो की भाति ये भो अडे देने के लिए सागर मे जाती है और वहा अडे देने के बाद मर जाती हैं। पर सागर मे ये अपेक्षाकृत कम समय बिताती है। इनके लार्वे भी सागर की लहरो के साथ बहकर नदियो मे आ जाते है और उन्ही मे वयस्क होते है। इनमे से प्रथम प्रजाति की मछलियो का रग आमतौर से भूरा होता है जो नीचे की ओर पीला होता जाता है। पूर्णतया विकसित मछलिया लगभग 120 सेन्टी-

मीटर तक लम्बी हो जाती है। इनमे पूछ शरीर की तुलना म काफी लम्बी होती है। किशोरो मे छड और बाकी शरीर नाप मे लगभग बराबर होता है।

ऐंग्युइल्ला बाइकलर का शरीर बहुत लम्बा और पूछ छोटी होती है, थूथन लम्बाकार होता है और मुख अपेक्षाकृत काफी बडा। इसके दात काफी बडे होते है।

पेंगासियम—इस प्रजाति की मछलिया थाईलैंड और कम्बोडिया मे खाद्य के रूप मे बहुत पसद की जातो है। इसकी **पेंगासियस पेंगासियस** प्रजाति की मछलिया गगा और ब्रह्मपुत्र नदियो मे बहुतायन से पायो जाती है। साथ ही वह महानदी और गोदावरी नदियो के निचले भागो मे भी मिलती है। यह मछली भी अपना प्रौढ जीवन नदियो मे बिताती है। पर अडे देने के लिए सागर म चली जाती है। सागर मे ही अडो मे लार्वे निकलते हैं और विकसित होते है। वयस्क मछलिया नदियो की आर चल पडती है। नदियो पर बनाए गये बाध इनकी प्रवास यात्राओ मे बाधा डालते है।

कुछ वैज्ञानिको का यह भी मत है कि **पेंगासियस पेंगासियस** की कुछ ऐसी किस्मे भी होती है जो नदियो मे ही अडे देती हैं और उनके बच्चे नदियो के मुखो की ओर जाते है।

लघु प्रवास यात्री

हमारी नदियो मे ऐसी अनेक जातियो की मछलिया पायी जाती हैं जो थोडी-थोडी दूर की प्रवास-यात्राए करती है। महासीर (**टोर टोर**), भारतीय कार्प मछलिया, बडे और मध्यम आकार की कैट फिश, बूच आदि इस प्रकार की मछलिया है।

महासीर उत्तर भारत की एक प्रमुख मछली है। यह देखने मे बहुत सुन्दर और विविध रगो वाली होती है। इसकी सुन्दरता इसके बडे षटकोणीय शल्को से और बढ जाती है। महासीर को चट्टानो से युक्त ठडी जलवायु के जलाशय, जिनसे नदिया निकलती है पसद हैं। उनसे वे बाढ-परिस्थितियो के अनुसार नदियो मे जाती रहती है। वर्षा के आरम्भ मे ये नदियो के उद्गम क्षेत्रो की ओर चली जाती है और वर्षा की समाप्ति पर धारा के साथ नीचे चली आती है।

पजाब मे महासीर मार्च से अप्रैल के बीच नदियो मे उतर आती

है। वैज्ञानिको के अनुसार ये वर्ष मे तीन बार—जनवरी से फरवरी तक, मई से जून तक और जुलाई से सितम्बर तक—अडे देती है। पर इनके अडजनन काल पर बाढ के प्रभाव पडते है। कुछ लोगो का यह मत भी है कि इनका कोई निश्चित अडजनन काल नही होता। पर यह निश्चित है कि ये एक बार मे थोडे से ही अडे देती है।

भारतीय कार्प मछलिया प्रजनन हेतु लघु प्रवास-यात्राए करती हैं। अडे देने के लिए ये नदियो से सलग्न उथले जलाशयो मे चली जाती हैं।

बूच (**बगारियस बगारियस**) ताजे पानी मे पाए जाने वाली सबसे भारी भारतीय मछली है। कभी-कभी यह 120 किलोग्राम तक भारी हो जाती है। इसकी उग्रता और नीचे लटके मुख के कारण इसे 'ताजे पानी की शार्क' भी कहा जाता है।

इसका शीर्ष चौडा और चपटा, कधे उठे हुए तथा शरीर पीछे की ओर शुडाकार होता हुआ एक पतले पुच्छ स्तम्भ मे समाप्त होता है। इसका रग पीला-भूरा या गुलाबीपन लिए हुए ओजी होता है। शरीर के चारो ओर काली या गहरी नीली धब्बेदार पट्टिया होती है। इसकी लम्बाई लगभग 2 मीटर तक होती है।

बूच आमतौर से बडी नदियो के ऊपरा भागो मे रहती है पर वर्षा काल मे निचले भागो मे आ जाती है। वर्षा के बाद यह फिर से ऊपरी भागो मे चली जाती है।

अन्य प्रदेशो से लाकर नीलगिरी, हिमाचल प्रदेश और कश्मीर के ठडे नालो मे पाली जा रही ट्राउट, **साल्मो गैरडनेराई गैरडनेराई** तथा **साल्मो ट्रुट्टाफारिओ** पानी के ताप के थोडा-सा भी कम हो जाने पर निकट के अपेक्षाकृत गर्म पानी मे चली जाती है। गर्मियो मे ये वापस चली जाती है।

5 रेगने वाले जीव और उभयचर

अनेक रेगने वाले प्राणी और उभयचर भी प्रवास-यात्राये करते है। रेगने वाले जीवो मे साप, कछुआ, मगर, गिरगिट जैसे जीव शामिल है जबकि उभयचर वे जीव हे जिन्हे जीवनयापन के लिए थल और जल दोनो ही जरूरी होते है। इनमे मेढक, टोड और न्यूट जैसे जीव शामिल है। इन दोनो वर्गो के जीव शीत रक्त वाले प्राणी होते है। उनके शरीर पर बाहरी वातावरण के ताप का प्रभाव पडता है। गर्मी के दिनो मे उनके शरीर का ताप बढ जाता है और सर्दी के दिनो मे गिर जाता है। इस कारण ऐसी स्थितिया आ सकती है कि गर्मी मे उनका रक्त उबलने लगे और सर्दी मे जमकर ठोस हो जाए। यदि ऐसा वास्तव मे हो जाए तो उनकी निश्चित रूप से मृत्यु हो जाए। इससे बचने के लिए शीत रक्त वाले प्राणी गर्मी मे ऐसी जगह, नम और ठडी जगह, चले जाते है जहा गर्मी न हो और सर्दियो मे किसी अपेक्षाकृत गम जगह पर जाकर शीत निद्रा मे सो जाते हे। इसीलिए सर्दी के दिनो मे विशेष रूप से ऐसे इलाको मे जहा कडाके की ठड पडती है, साप, छिपकली, मेढक नही दिखायी देते। इसके लिए उन्हे प्रवास यात्राये करनी पडती है। आमतौर से ये यात्राएँ काफी छोटी होती है।

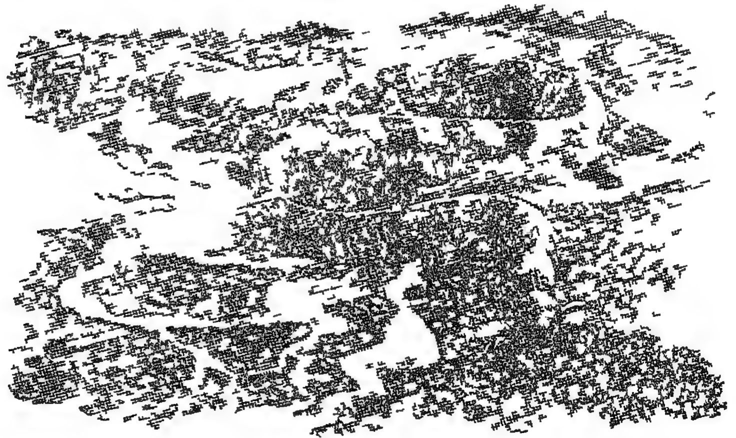
साप

हमारे देश के साप शीत निद्रा के लिए निकट के ही किसी बिल मे जा घुसते है। अक्तूबर मास मे वे काफी मात्रा मे भोजन करके इन बिलो मे घुस जाते है और सर्दी भर वहा सोते रहते है। इसलिए उन्हे जीवित रहने हेतु बहुत कम ऊर्जा की जरूरत होती है। वसन्त मे जब वातावरण गर्माने लगता है उनकी नीद खुल जाती है और ये बिलो से बाहर आ जाते है।

शीत निद्रा के लिए की गई उनकी प्रवास-यात्रा अनेक बार केवल कुछ सौ मीटर ही लम्बी होती है। पर उत्तर अमेरिका के कुछ जातियो के साप यथा ग्रेट बेसिन रेटल स्नेक, वेस्टर्न स्ट्रिप्ड रेसर, ग्रेट बेसिन

गोफर आदि शीत निद्रा के लिए विशेष गुफाओ मे जाते है। इन गुफाओं मे हजारो साप एक साथ शीत निद्रा लेते है। इसके लिए उन्हे कई किलोमीटर की यात्रा करनी पडती है। वे अपनी प्रवास-यात्रा पर उसी प्रकार एक साथ निकलते है जैसे पक्षी निकलते है। वे एक के पीछे एक, अगले साप की गध सूघते हुए, चलते है।

थल पर रहने वाले सापो को आमतौर से अडे देने के लिए अपने रहने की जगह से दूर नही जाना पडता। वे पास मे ही कोई उपयुक्त स्थल ढूढकर अडे दे देते है। पर सागर मे रहने वाले कुछ जाति के सापो को अडे देने के लिए पानी से बाहर आना पडता है। वे तट के निकट की किसी गुफा मे, सूखी जगह पर अडे देते है। इसके लिए उन्हे कभी कभी काफी दूरी तय करनी पडती है। फिलपीन द्वीप समूह के निकट के



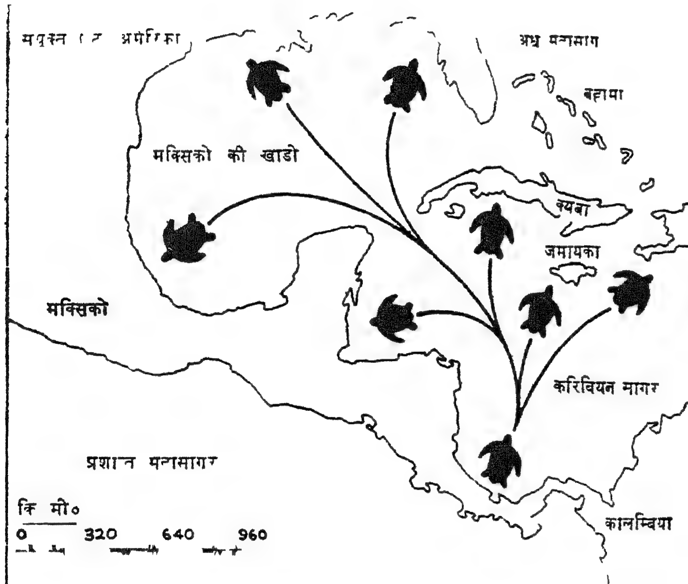
धारीदार समुद्री साप—जापान से आस्ट्रेलिया तक के सागरो मे तथा बगाल की खाडी मे पाये जाने वाले इस साप को हर वष अडे देने के लिए कई किलोमीटर की यात्रा करके तट पर आना पडता है।

सागर मे पाए जाने वाले साप अडे देने के लिए हमेशा फाटो द्वीप की गुफाओ मे आते है। ये हजारो की सख्या मे एक साथ आते हैं। कुछ समुद्री साप अडे नही देते वरन् बच्चे जनते है। वे सागर मे ही बच्चे जन देते है। सागर मे रहने वाले साप बहुत जहरीले होते है।

पेडो पर रहने वाले एक जाति के साप एक पेड से दूसरे पेड पर जाने के लिए, हवा मे कूदते है।

कछुये

कछुये पानी मे रहते है पर सूखी जमीन पर भी काफी दूर तक आ जाते है। कछुओ की कुछ जातिया नदी, झील, तालाबो मे पायी जाती है जबकि कुछ केवल मागर मे ही रहना पसद करती हैं। सागर मे रहने वाली जातिया विशेष रूप से प्रवासी जीव है और इनमे सबसे प्रसिद्ध है हरा कछआ। इस हरे कछये के बारे मे वैज्ञानिको ने बहुत अध्ययन किए है।



कोस्टा रिका से हरे कछुओ का प्रवसन

हरा कछुआ आमतौर से गर्म प्रदेशो के तटीय जल मे रहता है। वह समुद्री पौधे और कछुआ घास (टरटल ग्रास) खाता है। पर जैसे ही उसका प्रजनन-मौसम आता है वह विशेष स्थलो की ओर चल पडता है। हर जगह के हरे कछुओ का अपना एक विशेष प्रजनन स्थल होता है। उस तक पहुचने के लिए, कई बार उन्हे 2000 किलोमीटर की लम्बी यात्रा करनी पड जाती है। कितनी ही मुसीबते झेलते हुए वे अपने प्रजनन स्थल, जो आमतौर से कोई छोटा-सा निर्जन द्वीप होता है,

पहुचते है ।

वैज्ञानिको ने इन कछुओ के शरीर मे सूक्ष्म रेडियो ट्रासमीटर फिट करके और उनकी पीठ से गुब्बारे आदि बाधकर उनकी प्रवास-यात्राओ के मार्गो के बारे मे काफी जानकारी हासिल की है। ये कछुये सागर की सतह के निकट ही तैरते है—गहराई मे नही जाते क्योकि उन्हे सास लेने के लिए बार-बार ऊपर आना पडता हे। पर अभी यह नही मालूम है कि यात्रा के दौरान कछुये अपना दिशा निर्देशन कसे करते ह। कदाचित् वे सूर्य की स्थिति का उपयोग करते हे। यह पाया गया है कि अन्ध महासागर मे विचरण करने वाले एक विशेष जाति के हरे कछुये अडे देने के लिए 3000 किलोमीटर की दूरी तय करके कोस्टा रिका के तट पर आते हे। यह दूरी वे तैर कर पार करते हे। इसी प्रकार ब्राजील के तटीय जल मे रहने वाले हरे कछुये प्रजनन के लिए 2400 किलोमीटर दूर असेनसन द्वीप पर जाते है।

अपने प्रजनन स्थल पर पहुचकर हरे कछुये इकट्ठे होते है। यहा ये जोडा बनाते है। जोडा बनाने के एकदम बाद रात को ही मादा द्वीप पर ऐसी सूखी जगह की तलाश मे चल पडती है जहा सर्वोच्च ज्वार के दौरान भी सागर का पानी नही पहुच पाता। वहा वह अपने पिछले फ्लिपरो से एक से दो मीटर तक लम्बा और लगभग एक मीटर गहरा गड्ढा करती हे। उसमे वह एक बार मे लगभग 100 अडे देती हे। अडो को रेत और मिट्टी से अच्छी तरह ढक कर वह सुबह वापस तट पर आ जाती हे। लगभग दो हफ्ते बाद हरे कछुये फिर से जोडा बनाते है और मादा रात मे फिर अडे देने के लिए द्वीप पर चली जाती है।

इस प्रकार नर और मादा पाच या छह बार जोडा बनाते है और हर बार मादा लगभग 100 अडे जनती है।

प्रजनन मौसम समाप्त हो जाने पर हरे कछुये वापस अपने इलाके मे चले जाते है।

गालपेगोस द्वीपो पर एक विशाल कछुआ पाया जाता है। उसे 'राक्षस कछुआ' कहा जा सकता है। उसका खोल लगभग डेढ मीटर लम्बा होता है और वजन लगभग 100 किलोग्राम। यह कछुआ निचले मैदानो मे रहता है पर जिन पौधो को यह खाता हे वे पर्वत के ढालो पर उगते हे। इसलिए उसे प्रतिदिन अपने निवास स्थान से उन पौधो तक की यात्रा करनी पडती है। वह सुबह की ठडक मे पर्वतो की ओर

चल पडता है और शाम के समय लौटता है। दिन का गर्म भाग वह छाया मे गुजरता है।

गिरगिट

आमतौर से गिरगिट लम्बी प्रवास यात्रा नही करते। उत्तरी अफ्रीका मे पाए जाने वाला गिरगिट, जिसकी आखे बहुत चमकीली और प्रमुख होती है, दिन मे केवल एक बार नियमित रूप से पानी पीने जाता है। यह ही इसको प्रवास-यात्रा है।

इडोनेशिया और मलय प्राय द्वीप मे पाए जाने वाला 20 से 30 सेन्टीमीटर तक लम्बा गिरगिट एक वृक्ष से दूसरे पर जाने के लिए हवा मे छलाग लगाता है।

गालपंगोस द्वीपो के निकट के सागरो मे लगभग डेढ मीटर लम्बा एक गिरगिट (इगुआना) पाया जाता है। केवल यह गिरगिट ही सागर मे रहता है।

उभयचर

मेढक

यद्यपि अनेक जातियो के रगने वाल जीव भी ~~लचर होते है पर उनके लिए पानी इतना जरूरी नही होता जितना उभयचरो के लिए। वे अपना अधिकाश समय पानी मे ही बिताते है। अनेक जातियो के मेढक और टोड तो पानी के अन्दर ही शीत निद्रा ले लेते है जबकि अन्य जातियो के मेढक सर्दियो के दिनो मे दरारो और कीचड भरे स्थानो पर शीत निद्रा लेते है। सर्दियो के अन्त मे अथवा वसन्त के आरम्भ मे वे जगते है और अपने प्रजनन स्थलो की ओर चल पडते है। ये स्थल हमेशा ही पानी के अन्दर होते है। इनके अडो से जो जीव निकलते है उनका शरीर अपने माता पिता के सदृश नही होता। वे टैडपोल दशा मे होते है। उनकी पूछ होती है। अडे और टैडपोल पानी के बिना जीवित नही रह सकते।

मेढको के बारे मे एक विचित्र बात यह है कि वे अपने सबसे निकट के अथवा सबसे पहले मिलने वाले जलाशय मे अडे नही देते। इस काम के लिए वे एक विशेष जलाशय चुनते है। वैज्ञानिको ने अपने अध्ययनो मे पाया है कि प्रजनन के लिए बहुत से मेढक एक ही तालाब मे इकट्ठे हो जाते हैं। इसके लिए वे रास्ते मे पडने वाले अनेक जलाशयो को

छोडते जाते हैं और आधा किलोमीटर जैसी दूरी तय कर जाते है। अडे देने वाले मेढक अलग-अलग जलाशयो मे चले जाते है । समझा जाता है कि मेढक के शरीर मे होने वाली हारमोन सम्बन्धी कुछ क्रियाए उन्हे प्रवास-यात्रा के लिए प्रेरित करती है और उनकी तीव्र घ्राण शक्ति अडे देने के लिए तालाब विशेष को चुनने मे मदद देती है । मेढको की घ्राण शक्ति हमारे सूघने की क्षमता से कही अधिक तेज होती है ।

प्रजनन के लिए तालाब का चयन करते समय मेढक शायद पानी मे उगने वाले पौधो की गध की 'मदद' भी लेते है ।

गर्म देशो के जगलो मे रग-बिरगे मेढक मिलते हैं । बरसात के शुरू मे अनेक रगो और आकार-प्रकार के मेढक अपने छिपने के स्थानो से सैकडो की सख्या मे एकाएक प्रगट हो जाते है और तेज बहते हुए नालो मे से होते हुए दलदल भरे तालाबो या उथली नदियो मे अडे देने के लिए जाते है । वहा वे जोडा बनाते हैं। जोडा बनाने के बाद उनके झुड फिर एकाएक बिखर जाते है। ये मेढक केवल प्रजनन काल मे ही झुडो मे रहते हैं । बाकी समय वे अकेले रहना पसद करते हैं।

अनेक जातियो के मेढक अपनी प्रवास-यात्राओ मे दिन मे सूर्य की और रात के समय चन्द्रमा और तारो की मदद से मार्ग निर्धारित करते है । इसीलिए जब आकाश मे बादल छा जाते है तब उनकी दिशा गड-बडा जाती है ।

इस बारे मे एक गलतफहमी यह भी है कि प्रवास-यात्राओ के दौरान नर मेढको की टर्र-टर्र की आवाज मेढकियो का मार्ग-निर्देशन करती है। वास्तव मे अपनी प्रवास यात्राओ के दौरान, जिनका मुख्य उद्देश्य प्रजनन होता है, नर और मादा, दोनो, एकदम चुपचाप रहते है। नर केवल उस समय ही टर्राते हैं जब वे प्रजनन स्थल पर इकट्ठे हो जाते हैं। उनके इस टर्राने का उद्देश्य जोडा बनाने के लिए मादा को अपनी ओर आकर्षित करना होता है।

अधिकाश जातियो के मेढक और टोड अपने प्रिय तालाब पर पहुचते ही जोडा बनाना शुरू नही कर देने। वे कुछ दिन के लिए ठहरते है। कभी कभी वे 17 दिनो तक रुके रहते हैं। साथ ही जोडा बनाने के लिए वे जलाशय के किसी विशेष कोने मे ही जाते है। एक बार वहा पहुच जाने के बाद वे उस जगह से उस समय तक हटना पसन्द नही करते जब तक जोडा नही बना लेते ।

वैसे हर वर्ष वे जोडा बनाने के लिए जलाशय विशेष मे खास जगह ही जाते है।

न्यूट

प्रजनन के लिए हर वर्ष प्रवास-यात्रा करने वाले उभयचरो मे न्यूट भी महत्त्वपूर्ण हैं। वे मेढको और टोडो की भाति हर वर्ष एक विशेष जलाशय मे ही नही जाते। शीत निद्रा से जगने के बाद वे अपने प्रजनन स्थलो पर एक-एक करके पहुचते हैं। पर कभी कभी जब ठड की ऋतु देर तक चलती रहती है एक समय ही बहुत से न्यूट प्रजनन स्थल पर पहुच जाते है।

6 कीडे भी प्रवास-यात्रा करते है।

अधिकाश लोग कीडो को ऐसे छोटे जीव समझते हैं जो हमारे इर्द-गिर्द घूमते-फिरते रहते हैं और कभी-कभी काट भी खाते है। उन्हे यह जानकर कदाचित आश्चर्य होगा कि पृथ्वी पर जितने जीव है इनमे से 75 प्रतिशत कीडे ही हैं। समझा जाता है कि पृथ्वी पर 7,00,000 वशो के कीडे मकोडे पाए जाते है।

अधिकाश कीडे अपना जीवन एक ही स्थान या क्षेत्र मे गुजार देते है, पर टिड्डी जैसे कुछ कीडे लम्बी-लम्बी यात्राए भी करते है। जैसा कि आप पढ चुके है टिडडी की यात्रा वास्तव मे प्रवास-यात्रा नही है क्योकि वह वापस नही लौटती। पर कुछ कीडे वास्तव मे प्रवास यात्राए करते है यद्यपि उनकी ये यात्राए अन्य वर्गो के जीव-जन्तुओ की प्रवास-यात्राओ से भिन्न होती है। प्रवास-यात्राओ के लिए आमतौर से हम वर्ष को 'आधार अवधि' मानते है। पर अधिकाश कीडो का जीवन काल एक वर्ष से कम होता है। इसलिए कीडो की जो पीढी प्रवास यात्रा पर निकलती है वह वापस नही लौटती। वापस आने वाले कीडे दूसरी और कभी-कभी तीसरी पीढी के होते है क्योकि पहली पीढी उस समय तक नई पीढी को जन्म देकर समाप्त हो चुकी होती है।

सामान्यत कीडे नई जगह मे प्रजनन के बाद मर जाते है। उनके बच्चे या तो अपने मूल स्थान को वापस आ जाते है अथवा अपने जन्म स्थान पर ही बस जाते है।

अधिकाश कीडे उडकर ही प्रवास यात्रा करते है, पर कुछ ऐसे भी है जो थल मार्गो से चलते है। वैसे आमतौर से हम जिन कीडो को उडते देखते है वे सब प्रवास-यात्रा नही करते होते है। कीडो की अधिकाश उडाने भोजन की तलाश मे होती है अथवा जोडा बनाने के उद्देश्य से की जाती है। इसके विपरीत प्रवास-यात्रा के लिए की जाने वाली उडानो के दौरान कीडे भोजन अथवा अन्य चीजो के कारण 'पथभ्रष्ट' नही होते।

उडने वाले अधिकाश कीडे अपने जीवन मे कभी-न कभी प्रवास-यात्रा पर निकलते है। आमतौर से वे उस समय प्रवसन करते है जब उनके पख पूरी तरह विकसित हो चुके होते है पर वे यौन रूप से विकसित नही हुए होते। परन्तु कुछ जातियो के कीडे, उदाहरणाथ तितली, योन रूप से पूर्ण परिपक्व होने के बाद ही प्रवास-यात्रा पर निकलती है। अनेक बार इस प्रकार के कोडे उस समय प्रवाम यात्रा पर निकलते है जब उनकी आबादी बहुत अधिक हो जाती है। ब्रिटेन की केबेज व्हाइट तितली ऐसी ही परिस्थितियो मे प्रवास-यात्रा करती है।

आमतौर से कीडो की प्रवास यात्राए कम दूरी की, कभी कभी कुछ सौ मीटर की ही, होती है परन्तु उत्तर अमेरिका की मोनाक तितली अपनी यात्रा मे 1600 किलोमीटर से भी अधिक दूर चली जाती है। पूर्वी कनाडा मे जिन मोनाक तितलियो को धातु क्लिपे पहनायी गई थी उनमे कुछ, बाद मे, मेक्सिको मे, जो लगभग 2800 किलोमीटर दूर है, पायी गई।

यद्यपि अब भी कीडो की प्रवास-यात्राओ के बारे मे अनेक बाते हमारे लिए रहस्य बनी हुई है तथापि हमे इस बारे मे कुछ और जानकारी मिल गई है कि कीडे कुछ खास दिशाओ मे ही क्यो यात्रा करते है। अगर कोई कीडा हवा की गति से तेज उड सकता है तब वह अपनी उडान को स्वय नियत्रित कर सकता है और अपनी दिशा स्वय निर्धारित कर सकता है। इन हालातो मे वह सूर्य से अपनी दिशा निर्धारित कर लेता है पर साथ ही वह मकान, पेड, सडक आदि वस्तुओ से भी अपनी दिशा को 'सही' करता रहता है।

वे कीडे, जो अच्छे उडाकू नही होते, आमतौर से हवा के साथ बहते चले जाते है, पर इसका यह अर्थ नही है कि ऐसे कीडो का प्रवास व मात्र अवसरवश होता है। इस प्रकार के कीडे अपनी प्रवास उडान के दौरान तेज हवाओ के क्षेत्र मे, जानबूझकर ऊपर उठ जाते हैं। अपने गतव्य स्थान पर पहुचकर वे नीचे उतर आते है।

हमारे घरो, खेतो, खलियानो आदि मे पाए जाने वाली चीटिया भी भोजन खोजने के लिए नियमित रूप से प्रवास-यात्राए करती है। पर एक बिल मे रहने वाली न तो सब चीटिया प्रवास-यात्रा करती हैं और न ही उनकी प्रवास-यात्रा लम्बी होती है। केवल कुछ ही चीटिया भोजन लाने के लिए यात्रा पर निकलती हैं और वे भी अधिक से अधिक

कुछ सौ मीटर दूर ही जाती है।

कुछ चीटिया अपनी यात्रा को अधिक सुखद बनाने के लिए भोजन के स्रोत तक "सडके" भी बना लेती है। सडके बनाते समय वे यात्रा मे अडचन डालने वाली सब बाधाओ को हटा देती है। निश्चय ही ये सडके चूहे के आने जाने वाले मार्गो से भी सकरी होती है पर चीटियो के लिए वे बहुत उपयोगी होती है।

चीटिया एक के पीछे एक चलती है। वे उस मार्ग पर जिस पर पहले चीटिया गुजर रही थी, उस समय भी चलने का प्रयत्न करती है जब आगे कोई भी चीटी दिखाई नही देती। दरअसल वे पहले जाने वाली चीटियो द्वारा छोडी गई गध की मदद से अपना मार्ग खोजती है। उनकी सूघने की शक्ति इतनी तेज होती है कि वे किसी वस्तु के आस-पास घूमकर, उसके विभिन्न अगो को सूघकर वस्तु का सही आकार जान लेती है। गध की मदद से ही वे जान लेती है कि उस मार्ग विशेष से पहले कोई चीटी गुजरी है या नही, उनका बिल कहा स्थित है आदि। इसीलिए किसी पथ से सबसे पहले गुजरने वाली चीटी गध छोडती जाती है। अगर वर्षा या वायु अथवा किसी अन्य वस्तु के फलस्वरूप 'गध की लकीर' मे बाधा पड जाती है तब चीटिया भटक जाती है। वे एक जगह इकट्ठी होकर चारो तरफ फैलने लगती है।

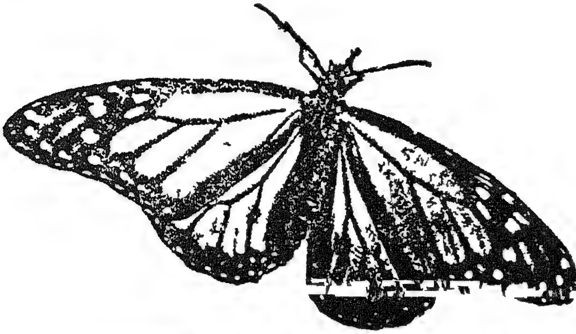
मरुस्थल की चीटिया, छोटी यात्राओ के दौरान, सूर्य से अपनी दिशा निर्धारित करती है। वे सूर्य से, निश्चित कोण बनाती हुई, सीधे पथ पर चलती है। लौटते समय वे पहले 180^0 कोण पर घूम जाती हैं और फिर सूर्य से उतना ही कोण बनाती हुई, सीधे रास्ते पर चल पडती है। अगर उनके रास्ते मे कोई दर्पण इस प्रकार से रख दिया जाता है कि सूर्य का प्रतिबिम्ब विपरीत दिशा मे बने, तब चीटी एकदम उल्टी ओर (180^0 कोण पर) घूम जाती है।

अपना यात्रा पथ निर्धारित करने के लिए अन्य अनेक कीडे भी सूर्य की दिशा का उपयोग करते है। पर हमेशा ही इसमे आवश्यक सशोधन करने पडते हैं अन्यथा 'सीधे' मार्ग पर बढता हुआ कीडा सुबह पूर्व की ओर झुक जाएगा और शाम के समय पश्चिम की ओर।

तितली

तितलियो और शलभो की अनेक जातिया प्रवास-यात्राए करती है।

पर शायद उत्तर अमेरिका की मोनार्क जाति की तितली की प्रवास-यात्रा सबसे प्रसिद्ध है। इसके काले शरीर पर सफेद धारिया होती हैं और गहरे नारगी-लाल पखो के किनारे एकदम काले होते है। यह



उत्तर अमेरिका की सुन्दर तितली मोनार्क

अत्यन्त आकर्षक होती है। गर्मी की ऋतु मे ये तितलिया सयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तरी भाग और कनाडा मे विचरण करती रहती हैं। पर सितम्बर मास शुरु होते ही वे बडी सख्या मे दक्षिण की ओर चल पडती है। आमतौर से इनकी गति 15-16 किलोमीटर प्रति घटे होती है और ये धरती से लगभग 5 मीटर की ऊचाई पर उडती है। ये दो मार्गों से, जिनमे से एक सयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी भाग से गुजरता है और दूसरा पश्चिमी भाग से, उडती हैं। ये उस समय तक उडती जाती है जब तक फ्लोरिडा या केलीफोर्निया नही पहुच जाती। यहा ये सर्दियो के दौरान शीत निद्रा लेती है।

इनकी शीत निद्रा के सिलसिले मे सान फ्रासिसको के निकट का एक जगल बहुत प्रसिद्ध है। ये तितलिया पिछले 70 वर्षों से शीत निद्रा के लिए नियमित रूप से इस जगल मे आ रही है। सर्दी की ऋतु मे ये सदाबहार पेडो पर चिपकी रहती है। इन पेडो पर इतनी अधिक सख्या मे मोनार्क तितलिया चिपक जाती है कि वे 'तितली वृक्ष' (बटर फ्लाई ट्री) कहलाने लगे है।

उस समय इस जगल की छटा देखते ही बनती है। प्रतिवर्ष हजारो व्यक्ति इन तितलियो को देखने आते हैं। अगर कोई दर्शक इन्हे छेडता है या इन पर पत्थर मारता है तब उस पर 500 डालर तक का जुर्माना

हो सकता है।

मार्च का महीना आते-आते ये जग जाती है और उत्तर की ओर चल पडती है। जून के आरम्भ तक वे दक्षिण कनाडा मे पहुच जाती है। वास्तव मे वे नितलिया जिन्होने यात्रा आरम्भ की थी, नही लौटती उनकी सताने लौटती है। ये शीत निद्रा से पहले और बाद, दोनो समय प्रजनन करती है। इनके प्रजनन मे अमेरिकी मिल्कवीड वृक्ष का बहुत योग होता है। यह मिल्कवीड वृक्ष की पत्तियो की निचली ओर अडे देती है। अडे से निकलने वाले लार्वे लगभग एक माह तक इस पत्तियो को खाते रहते हैं। इतने समय मे वे काफी बडे हो जाते है। तब वे प्यूपा मे रूपातरित हो जाते है। एक हफ्ते बाद उनसे तितली निकलती है।

मोनार्क तितलियो की यह प्रवास-यात्रा 2500 किलोमीटर से भी लम्बी हो सकती है।

'पेन्टेड लेडी' नाम की एक अन्य तितली दक्षिण अमेरिका के अतिरिक्त पूरे ससार मे पायी जाती है। यह महाद्वीपीय धरती से लगभग डेढ हजार किलोमीटर दूर स्थित अध महासागर के द्वीपो से लेकर उत्तर यूरोप तक तथा मेक्सिको, मिस्र, तुर्की, यूक्रेन, कनाडा आदि मे पायी जाती है। यह लम्बी-लम्बी प्रवास यात्रा करती है। इसके झुड के झुड प्रवास यात्रा पर निकलते है।

पूर्व अफ्रीका मे पायी जाने वाली सफेद तितली भी प्रवास-यात्री कीडा है।

तितलिया सूर्य, चाद और तारो की मदद से अपना मार्ग निर्धारित करती है।

शलभ

शलभो की भी कुछ जातिया प्रवास-यात्रा करती है। पर निशाचर होने के कारण इनकी यात्राओ के बारे मे सही-सही जानकारिया प्राप्त करना कठिन होता है। उष्णकटिबध का शलभ **इरीन्नीइस एल्लो** काफी जल्दी-जल्दी दक्षिण अमेरिका से कनाडा जाता रहता है। यह झुडो मे यात्रा करता है। सिल्वर-वाई नामक का शलभ, कभी-कभी, गर्मियो मे उत्तर यूरोप मे बहुत बडी सख्या मे आ जाता है और फसलो को बहुत हानि पहुचाता है। उसका स्थायी निवास स्थल भूमध्य-

सागर का पूर्वी तट है।

कपास शलभ (काटन माथ) अमेरिका के गर्म प्रदेशो से अक्तूबर के महीने मे उत्तरी भागो की ओर उड जाते है। इनके बहुत बडे बडे झुड यात्रा पर निकलते हैं। एक झुड मे कई लाख शलभ होते है। इनके गतव्य स्थल होते है उत्तरी भागो के कपास के खेत। उन पर उतर कर ये उन्हे काफी हानि पहुचाते है।

हमारे देश मे अनेक प्रकार के ऐसे शलभ पाए जाते है जो गर्मी के महीनो मे हिमालय की तलहटी मे चले जाते है। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के शलभ गर्मी से बचने के लिए न्यू साउथ वेल्स के पर्वतो पर चले जाते है। वहा वे 1000 से 1500 मीटर की ऊचाई पर गुफाओ या पत्थरो की दरारो मे रहे आते है। जब मैदानी भागो मे गर्मी कम हो जाती है तो वे वापिस आ जाते है। वास्तव मे वे शलभ नही लौटते जिन्होने यात्रा आरम्भ को थी, उनकी सताने लौटती है। अपने 'ग्रीष्म विश्राम' के दौरान अनेक शलभो को भोजन की तलाश मे बाहर निकलना पडता है। यदि ऐसा नही करते तो भूख से मर जाते है। न्यू साउथ वेलस के पर्वतो की गुफाओ मे इन मृत शलभो के बडे-बडे ढेर मिले है।

टिड्डी

यद्यपि टिड्डी की यात्रा प्रवास-यात्रा नही है पर वह हमारे अनाज उत्पादन को बहुत प्रभावित करती है। इसलिए सक्षेप मे उसका भी वर्णन कर लिया जाए। टिड्डी की अनेक जातिया होती हैं और उनमे से अधिकाश अफ्रीका मे पैदा होती हैं और वही से वे पश्चिम एशिया, दक्षिण यूरोपीय देशो, भारत और पूर्व एशिया के देशो को जाती है। सबसे लम्बी यात्राए करने वाली जातिया हैं मरुस्थली टिड्डी और प्रवासी टिड्डी।

टिड्डी और ग्रासहापर एक ही कीडा हैं। वास्तव मे ग्रासहापर आमतौर से अकेला रहना पसन्द करता है। पर कभी-कभी ऐसी स्थितिया पैदा हो जाती है कि वह झुडो मे रहने लगता है। जलवायु परिस्थितिया जैसे भयकर सूखा आदि, इन्हे एक ही स्थान पर इकट्ठे होने के लिए मजबूर कर देती है। निश्चय ही यह स्थान ऐसा होता है जहा कुछ नमी होती है। यही सब मादाए अडे देती है। मादा अडो के 2

या 3 थैले देती है और हर थैले मे70 से80 तक अडे होते है। इन अडो मे से जो बच्चे निकलते हैं उनके पख नही होते पर उनमे यात्रा पर निकल पडने की प्रवृत्ति बहुत तीव्र होती है। इसका प्रमुख कारण होता है जगह की बेहद कमी। हर दिन इनकी आबादी बहुत तेजी से बढती है। हर दिन भोजन और निवास की समस्याए तीव्र से तीव्रतर होती चली जाती है। इसीलिए जैसे ही इनके पख निकलते है ये कही बहुत दूर जाने के लिए चल पडते है। ये झुडो मे निकलते है। धीरे-धीरे ये झुड आकार मे बढते ही जाते है। कभी कभी ये कई किलोमीटर लम्बे और सैकडो मीटर चौडे हो जाते है। जब वे आकाश मे उडते है तो दिन के समय भी अधेरा छा जाता है। जिस किसी क्षेत्र मे ये रात को उतरते हैं वहा के पेड पौधो, फसलो आदि का एकदम सफाया कर देते है। वहा एक पत्ता भी नही बचता।

जैसा कि तुम्हे मालूम है कि ये विनाशकारी झुड वापिस नही लौटते। सब के सब धीरे धीरे नष्ट हो जाते है।

परिशिष्ट

देश के राष्ट्रीय उद्यान

नाम	क्षेत्रफल (वर्ग किलोमीटर)
अडमान-निकोबार—उत्तर बटन	0 44
दक्षिणी बटन	0 03
मध्य बटन	0 44
माऊट हेरीट	46 62
समुद्री उद्यान	281 50
सैडल पीक	32 54
अरुणाचल प्रदेश—नमदफा	1807 82
माउलिंग	500 00
असम—काजीरगा	430 00
मनास	390 00
उत्तर प्रदेश—कार्बेट	520 82
दुधवा	498 29
नदा देवी	630 33
फूलो की घाटी	87 50
राजाजी	831 53
उडीसा—उत्तर सिमलीपाल	303 00
कर्नाटक—अशी	250 00
कुद्रेमुख	600 33
नगरहोल	571 55
बदीपुर	874 20
बेन्नेरघाट्टा	104 34
केरल—इरविकुलम	97 00
पेरी यार	777 00
साइलैट वैली	89 51

गुजरात	—गिर	359 48
	वसदा	24 00
	बेलावदार	34 08
	समुद्री	162 89
गोवा	—भगवान महावोर	107 00
जम्मू-काश्मीर	—खिस्तवार	310 00
	दाचीगाम	141 00
	सिटी फारेस्ट	9 07
	होमिस	3350 00
तमिलनाडु	—गिडी	2 71
	समुद्रो	—
पश्चिम बगाल	—निओग घाटी	88 00
	मिगा लिला	78 00
	सुन्दरबन	2585 00
बिहार	—वेल्टा	979 29
मध्य प्रदेश	—इन्द्रावती	1258 00
	कन्गेर	200 00
	कान्हा	940 00
	पन्ना	543 00
	पेच	292 85
	फासिल	0 27
	बाधवगढ	448 84
	माधव	156 15
	वन विहार	4 45
	सजय	1838 00
	सतपुडा	524 37
मणिपुर	—केइबुल लामजाओ	40 00
	सिरोहो	41 30
महाराष्ट्र	—तर्दाबा	166 55
	नवे गाव	133 83
	पेच	257 26

मेलघाट	1571 00
सजय गाधी	94 69
मेघालय—नोरकेक	68 01
बाल फाक्रम	220 00
राजस्थान—किलादेव (घाना)	25 73
मरुस्थल	3162 00
रण थोम्भर	392 00
सरिसका	273 80
सिक्किम—खगचेद ज़ोगा	850 00
हिमाचल प्रदेश—ग्रेट हिमालयन	1736 00
पिन वैली	675 00

देश के विभिन्न अभ्यारणो की सख्या ओर क्षेत्रफल

	राज्य	अभ्यारणो की सख्या	क्षेत्रफल (वग किलोमीटर)	राष्ट्रीय उद्यानो की सख्या
1	अडमान-निकोबार	94	455 98	6
2	अरुणाचल प्रदेश	4	1474 25	2
3	असम	8	551 87	2
4	आध्र प्रदेश	16	9672 53	—
5	उत्तर प्रदेश	14	6785 24	5
6	उडीसा	16	6727 01	1
7	कर्नाटक	18	3785 58	5
8	केरल	11	1271 44	3
9	गुजरात	12	16824 6[illegible]	4
10	गोवा	4	263 32	1
11	चडीगढ	1	25 42	—
12	जम्मू कश्मीर	13	5309 67	4





साहित्य सहकार